समर्पण

भारतीय नारीत्व की प्रज्वलित शिखा,
भारतरत्न श्रीमती इन्दिरा गांधी
के प्रति

तुम हो पुरातन साधना संजीवनी संसार की।
तुम शक्तिरूपिणि मुक्तिरूपी माया महा कर्त्तार की।।
तुम आदि सुषमा विश्व की, तुम आदि शोभा सृष्टि की।
तुम संकुलित छवि हो प्रथम सम्पूर्ण व्यष्टि समष्टि की।।
तुम ऋद्धि, सिद्धि, समृद्धि नित सर्वार्थ मंगल-साधिका।
तुम राम की वामा तुम्ही हो श्याम की वह राधिका।।
तुम कण्व-कन्या वन तपोवन में मधुरता ला रही।
तुम मूर्ति महिमा विश्व पर माया मनोहर छा रही।।
तुम सृष्टि उर की रागिनी तुम मातृ हो अनुरागिनी।
तुम प्रेम की तृषिता सरल सौभाग्यमयि बड़भागिनी।।
तुम नेत्र-रंजनि, मोह-भंजनि ज्ञान-ध्यान-प्रसारिणी।
तुम हो शिवा कैलास की जगतारिणी उपकारिणी।।
तुम विश्व-जननि विशालहृद् सर्वत्र सुषमाशालिनी।
तुम लोक-लालिनि धनि सदय नित सृष्टिसुत की पालिनी।।
जय देवि ! मान. ! सहचरी जय जयति लीला मालिनी।
जय मंगले ! जय जय शिवे ! जय जयति शक्ति करालिनी।।

—'सुहृद'

श्री सुहृद्जी

सुहृद् जी का जन्म २ अक्टूबर १९०० ईस्वी, फसली सन् १३०८ साल आश्विन शुक्ल पक्ष द्वितीया को छपरा जिलान्तर्गत सिताबदियारा नामक ग्राम में हुआ था। उन्हें बचपन से ही साहित्य में प्रेम है। १९२१ ई० में वे पढ़ना लिखना छोड़कर असहयोग-आन्दोलन में प्रविष्ट हुए और जेल गये। जेल से छूटने के बाद वे बेगूसराय में अपने भाई के पास चले आये। उन्होंने यहीं अपना कार्य-क्षेत्र बनाया। यों तो अब उनका कार्य-क्षेत्र सम्पूर्ण भारत है। बेगूसराय स्टेशन के उत्तर सुहृद् नगर में एक बहुत बड़ी चहार-दिवारी है। उसमें एक बहुत बड़ा फाटक है जिसके भीतर एक सुन्दर फुलवारी। फुल-वारी विभिन्न फूलों से आच्छादित है। उसकी सजावट अपनी है। उसमें एक तिमंजिला मकान है जिसके कमरे बड़ी सादगी से और सौन्दर्य से सजे रहते हैं—मेज, कुर्सियाँ, सोफा सेट आदि सबकुछ झड़े-पुंछे यथासाध्य रहते हैं मानो किसी अतिथि के स्वागत की तैयारी हो। ईंट-पत्थरों से निर्मित यह छोटा महल कह रहा है कि मैं और घरों से कुछ और हूँ और मुझे भवन के रूप में मत देखिये। इसके कण-कण में कुटिया की पावनता अदृश्य है और चप्पे-चप्पे पर त्याग-तपस्या की मुहर नजरबन्द है। सर्वत्र साधना और पवित्रता की छाप छिटकी हुई है।

विरक्ति के हिमालय पर अवस्थित सुहृद् जी न लोभ की ज्वालामुखी पर कभी हाथ नहीं रखे। संसार में रहते हुए वे अपने को माया, मोह और लोभ से अलग रखे हुए हैं। वे भीतर से तत्त्वज्ञानी है। वे जो कुछ करते हैं तन, मन, धन से। प्रत्येक अवस्था में वे भगवान् पर निर्भर रहते हैं। यही उनमें सबसे बड़ी आस्तिकता है। वे बराबर कहते हैं कि मेरा अपना अनुभव है कि अनुचित रीति से जो धन प्राप्त होता है वह कुछ ही समय में पूर्व संचित धन को लेकर लुप्त हो जाता है। वे प्रतिदिन, प्रतिक्षण, प्रतिपल अपने को, अपनी बुद्धि को, मन को एवं आचार-विचार को उच्चतम स्तर पर चढ़ाते रहते हैं। इसलिए निरंतर सावधानता के साथ-साथ पवित्र विचारों को शुद्ध मार्गों से बढ़ाते रहते हैं। वे कभी प्रमाद नहीं करते, न कभी असावधान होते हैं, इसलिए वे इतने उच्च स्तर पर पहुँचे है।

संसार में जितने बड़े साहित्यकार हुए हैं उनकी भाषा ऐसी रही है कि साधारण जन भी उसका स्वाद ले सकें। भाषा में सरसता और भावों में क्लिष्टता का स्मरण सुहृद् जी बराबर रखते है। शैली तो व्यक्तित्व का एक अंग है। सुहृद् जी के व्यक्तित्व के विकास के साथ-साथ शैली का भी विकास हुआ है। वे स्वयं जो अनुभव

क्रम

महात्मा गांधी

जिस समय की बात मैं कर रहा हूँ उस समय महात्मा गांधी का न समुद्र-जैसा व्यक्तित्व था और न युग-व्यापी कृतित्व। नवम्बर, १९२० ई० की बात है। मैं राजपूत हाई स्कूल, सारण का छात्र था। गांधीजी को पढ़े-लिखे लोग ही, जिनका समाचार-पत्रों से सरोकार रहता था, जानते थे। मैं कविताएँ पत्र-पत्रिकाओं में दिया करता था। इसलिए उनसे मेरा सरोकार रहता था। मेरे गाँव (सिताबदियारा) में साप्ताहिक पत्र 'प्रताप' (कानपुर) आता था जिसे लोग पढ़ा करते थे। गांधीजी अफ्रीका से विजय प्राप्त कर भारत लौटे थे। चम्पारण के लोग अंग्रेजों के अत्याचारों से पीड़ित थे। १९१६ ई० में कांग्रेस का अधिवेशन लखनऊ में हुआ था। उसमें गांधीजी गये थे और चम्पारण के पण्डित राजकुमार शुक्ल भी। शुक्लजी ने उन्हें निलहे अंग्रेजों के अत्याचार की कहानी कही और उनसे चम्पारण चलने का आग्रह किया। गांधीजी ने चम्पारण जाना स्वीकार कर लिया। उन दिनों अंग्रेजों के डर से कोई बोलता तक न था, विद्रोह करने की बात तो दूर रही। गांधीजी चम्पारण गये और वहाँ के प्रसिद्ध वकील गोरख बाबू के घर में आठ महीनों तक ठहरे। गोरख बाबू के पौत्र श्री अरुणकुमार आई० ए० एस० हैं।

गांधीजी के साथ चम्पारण में काम करनेवालों में सर्वश्री ब्रजकिशोर प्रसाद, राजेन्द्र प्रसाद, अनुग्रहनारायणसिंह, शंभुशरणजी (जिनके पुत्र श्री शंकरशरण, आई० ए० एस० हैं), रामनवमी प्रसाद, जे० बी० कृपलानी आदि थे। गांधीजी ने लोगों को अंग्रेजों से राहत दिलाई। यह उनकी भारत में पहली विजय थी। इसके बाद सारण के बहुत लोग उनके नाम से परिचित हो गये।

नवम्बर, १९२० ई० में श्री गांधी छपरा गये। एस० पी० की कोठी के सामने उत्तर में एक बहुत बड़ा दुमंजिला मकान था जिसमें एक कायस्थ कम्पनी खुली थी। मकान के मालिक थे स्वर्गीय सरयूप्रसाद बैरिस्टर। नीचेवाले कमरे में दरी-जाजिम बिछा हुआ था और दीवार के निकट बड़े-बड़े तकिये रखे हुए थे। उसी मकान में गांधी-जी ठहरे थे। १९३४ ई० के भूकम्प में मकान का ऊपरी हिस्सा धराशायी हो गया। अब वह मकान इकमंजिला है। उस मकान के दक्षिण में डॉ० महमूद का मकान था जिसके पास ही मेरा डेरा था। मैं अपने साथियों के साथ स्कूल जा रहा था। रास्ते में ज्ञात हुआ कि गांधीजी आये हैं, अमुक मकान में ठहरे हैं और आज तीन बजे भगवान बाजार

चौबीस घण्टों में दूसरों के बहत्तर घण्टों का काम कर सकते थे तो उसका कारण यही था कि वे निर्धारित समय से ही सब काम करते थे।

वे सबके सुख-दुःख में सम्मिलित होते थे। किसी के भी वियोग पर वे सहानुभूति का सन्देश भेजते थे। सभी उनके पास जा सकते थे और अपनी समस्याओं का समाधान करा सकते थे। सत्यप्रियता, निर्भीकता और स्पष्टवादिता उनकी और विशेषताएँ थीं। वे दृढ़प्रतिज्ञ थे, सब कार्यकर्त्ताओं से निकट सम्बन्ध बनाये रखते थे, सब काम सुचारु रूप से कुशलतापूर्वक करते थे, वे अतीव परिश्रमी थे। वे बड़े-बड़े कामों में लगे रहते हुए और जटिल समस्याओं का समाधान करते हुए भी अपनी विनोद-वृत्ति का त्याग न करते थे। वे सदा हँसते-हँसाते रहते थे। वे सबसे प्रेम करते थे। वे सभी प्रकार के लोगों को अपनी ओर आकृष्ट करते थे। विरोधी भी उनका सम्मान करते थे।

स्वतन्त्रता-प्राप्ति के बाद उनकी प्रार्थनासभा के अहाते में बम-विस्फोट हुआ। लेकिन इससे वे तनिक भी उद्विग्न न हुए। वे निर्विकार थे। उनकी प्रार्थना-सभा नित्य नियमित रूप से होती रही। वे आरक्षी संरक्षण को नापसन्द करते थे। सचाई यह थी कि कोई कल्पना में भी यह नहीं सोचता था कि उनपर कोई आक्रमण करेगा। पूछा जा सकता है, क्या भारत-विभाजन की कल्पना किसी ने की थी? कौन जानता था, अकारण अप्रत्याशित-कल्पनातीत ढंग से भारत-विभाजन में सत्तर-अस्सी लाख लोग मारे जायेंगे और डेढ़ करोड़ लोगों को घर-बार, कुटुम्ब-परिवार छोड़कर विस्थापित होना पड़ेगा? गांधीजी ने स्वयं कहा था—"सोचता हूँ तो मेरा सिर चकराता है। यह सब हुआ कैसे? विश्व के इतिहास में ऐसी दुर्घटना कभी नहीं हुई, इसके कारण मेरा और आपका सिर शर्म से झुक जाना चाहिए।"

वस्तुतः हमारा सिर ३० जनवरी, १९४८ ई० की शाम के पाँच बजकर पाँच मिनट पर शर्म से झुक गया। गांधीजी, उपवास के बाद जिनकी दुर्बलता दूर नहीं हुई थी, अपनी पोती और पोते की बहू का सहारा लेकर प्रार्थना-सभा में आ रहे थे। अकस्मात् एक युवक आगे बढ़ा, बापू के चरणों में झुका और घुटने टेककर अज्ञातशत्रु पर धाँय-धाँय गोलियाँ दागने लगा। गांधीजी ने हाथ जोड़े, 'हे राम!' कहा और धराशायी हो गये। क्या इतना बड़ा दुष्काण्ड इतने ओछे हाथों कभी हुआ? लेकिन 'जरा' नाम के व्याध के हाथों द्वारकाधीश के गोलोक जाने की बात भी कुछ ऐसी ही है।

महाभारत के वैभवकाल में स्वर्ण-द्वारका-अधीश्वर श्रीकृष्ण और परतन्त्र भारत की छोटी-सी सुदामापुरी में जन्मे रामभक्त जनसेवक श्री मोहनदास कर्मचन्द गांधी के महाप्रयाण में समानता देखना समसामयिक को पौराणिक बनाने की व्यर्थ चेष्टा होगी। गांधीजी के जन्म-मरण के बीच एक अद्भुत साम्य देखना ही पर्याप्त होगा। उनका जन्म २ अक्तूबर, १८६९ ई० के दिन एक ऐसे स्थान में हुआ था जिसके एक ओर श्रीकृष्ण का मन्दिर था और दूसरी ओर श्रीराम का, और मरण हुआ सन्ध्या की प्रार्थना-सभा में। एक सामान्य बालक के जन्म और एक महामानव के देहोत्सर्ग में साम्य का एक ही तथ्य हो सकता है कि प्रत्येक नर में नारायण का निवास है।

चौबीस घण्टों में दूसरों के बहत्तर घण्टों का काम कर सकते थे तो उसका कारण यही था कि वे निर्धारित समय से ही सब काम करते थे।

वे सबके सुख-दुःख में सम्मिलित होते थे। किसी के भी वियोग पर वे सहानुभूति का सन्देश भेजते थे। सभी उनके पास जा सकते थे और अपनी समस्याओं का समाधान करा सकते थे। सत्यप्रियता, निर्भीकता और स्पष्टवादिता उनकी और विशेषताएँ थीं। वे दृढ़प्रतिज्ञ थे, सब कार्यकर्त्ताओं से निकट सम्बन्ध बनाये रखते थे, सब काम सुचारु रूप से कुशलतापूर्वक करते थे, वे अतीव परिश्रमी थे। वे बड़े-बड़े कामों में लगे रहते हुए और जटिल समस्याओं का समाधान करते हुए भी अपनी विनोद-वृत्ति का त्याग न करते थे। वे सदा हँसते-हँसाते रहते थे। वे सबसे प्रेम करते थे। वे सभी प्रकार के लोगों को अपनी ओर आकृष्ट करते थे। विरोधी भी उनका सम्मान करते थे।

स्वतन्त्रता-प्राप्ति के बाद उनकी प्रार्थनासभा के अहाते में बम-विस्फोट हुआ। लेकिन इससे वे तनिक भी उद्विग्न न हुए। वे निर्विकार थे। उनकी प्रार्थना-सभा नित्य नियमित रूप से होती रही। वे आरक्षी संरक्षण को नापसन्द करते थे। सचाई यह थी कि कोई कल्पना में भी यह नहीं सोचता था कि उनपर कोई आक्रमण करेगा। पूछा जा सकता है, क्या भारत-विभाजन की कल्पना किसी ने की थी? कौन जानता था, अकारण अप्रत्याशित-कल्पनातीत ढंग से भारत-विभाजन में सत्तर-अस्सी लाख लोग मारे जायेंगे और डेढ़ करोड़ लोगों को घर-बार, कुटुम्ब-परिवार छोड़कर विस्थापित होना पड़ेगा? गांधीजी ने स्वयं कहा था—"सोचता हूँ तो मेरा सिर चकराता है। यह सब हुआ कैसे? विश्व के इतिहास में ऐसी दुर्घटना कभी नहीं हुई, इसके कारण मेरा और आपका सिर शर्म से झुक जाना चाहिए।"

वस्तुतः हमारा सिर ३० जनवरी, १९४८ ई० की शाम के पाँच बजकर पाँच मिनट पर शर्म से झुक गया। गांधीजी, उपवास के बाद जिनकी दुर्बलता दूर नहीं हुई थी, अपनी पोती और पोते की बहू का सहारा लेकर प्रार्थना-सभा में जा रहे थे। अकस्मात् एक युवक आगे बढ़ा, बापू के चरणों में झुका और घुटने टेककर अजातशत्रु पर धाँय-धाँय गोलियाँ दागने लगा। गांधीजी ने हाथ जोड़े, 'हे राम!' कहा और धराशायी हो गये। क्या इतना बड़ा दुष्काण्ड इतने ओछे हाथों कभी हुआ? लेकिन 'जरा' नाम के व्याध के हाथों द्वारकाधीश के गोलोक जाने की बात भी कुछ ऐसी ही है।

महाभारत के वैभवकाल में स्वर्ण-द्वारका-अधीश्वर श्रीकृष्ण और परतन्त्र भारत की छोटी-सी सुदामापुरी में जन्मे राममक्त जनसेवक श्री मोहनदास करमचन्द गांधी के महाप्रयाण में समानता देखना सममार्मिक को पौराणिक बनाने की व्यर्थ चेष्टा होगी। गांधीजी के जन्म-मरण के बीच एक अद्‌भुत साम्य देखना ही पर्याप्त होगा। उनका जन्म २ अक्टूबर, १८६९ ई० के दिन एक ऐसे स्थान में हुआ था जिसके एक ओर श्रीकृष्ण का मन्दिर था और दूसरी ओर श्रीराम का, और मरण हुआ सन्ध्या को प्रार्थना-सभा में। एक सामान्य बालक के जन्म और एक महामानव के देहोत्सर्ग में साम्य का एक ही तत्त्व हो सकता है कि प्रत्येक नर में नारायण का निवास है।

मठियावाले मैदान में (जिस मे उत्तर) भाषण करेंगे। मेरे मन में उनके दर्शन की अदम्य इच्छा जागृत हुई। मैं स्कूल गया और कुछ साथियों के साथ छुट्टी लेकर उनके दर्शनार्थ चला आया। गांधीजी नीचेवाले कमरे में फर्श पर बैठकर दो-चार लोगों से बातें कर रहे थे। हम लोग भी उनकी बगल में बैठ गये। गांधीजी खादी की धोती और मिरजई पहने हुए थे और उनके सिर पर बहुत बड़ा काठियावाड़ी मुरेठा था। वे महज देहाती-से प्रतीत होते थे। लेकिन उनके चेहरे पर दिव्यता और शान्ति थी। उन्होंने हम लोगों के नाम और पते पूछे। और क्या-क्या उन्होंने पूछा, याद नहीं है। कुछ देर के बाद हम लोग वहां से चल दिये। जब तक हम लोग वहां बैठे, ऐसा प्रतीत होता था कि घर के किसी बड़े-बूढ़े के पास हों। मैंने अनुभव किया कि वे असीम भावनाओं की मूर्ति थे। हम लोग निश्चित समय पर सभा में भी गये। मंच छोटा था किन्तु ऊंचा था। उसपर दो कुर्सियां थीं। गांधीजी उसी वेशभूषा में आये जिसमें मैंने उन्हें सर्वप्रथम देखा था। उनके साथ मज़रूलहक़ साहब थे। वे काली शेरवानी, लम्बी-खड़ी टोपवाली लाल तुर्की टोपी और पाजामा पहने हुए थे। एक कुर्सी पर गांधीजी आसीन हुए और दूसरी पर हक साहब। हक साहब ने उठकर गांधीजी का परिचय दिया। इसके बाद गांधी-जी का भाषण हुआ। उन्होंने कहा था—'हम लोग ईश्वर के अंश हैं। हमें अत्याचारियों से डरना नहीं चाहिए।' उन्होंने पर्दे के बारे में भी कुछ कहा था। वे हिन्दी ठीक-ठीक नहीं बोल पाते थे लेकिन बोले थे हिन्दी में ही। उनकी वेशभूषा और भाषणगत सार-गर्भिता ने जनता को अपनी ओर खींचा। इसके बाद उन्हें देखने और उनके साथ रहने के अनेक अवसर आये।

वे महापुरुष थे। लगभग चालीस वर्ष तक वे भारत के राजनैतिक क्षितिज पर सूर्य-सदृश उदित रहे। अगणित छोटे-बड़े व्यक्ति उनसे सम्पृक्त हुए और उनके व्यक्तित्व से प्रभावित हुए। उनमें सबसे बड़ी विशेषता थी वचन-कर्म-एकता। वे जो कहते थे, करते थे और जितना करते थे उतना ही कहते थे। इसलिए उनके शब्द नपे-तुले होते थे।

चर्खा हमारा पुराना यंत्र था जिसे हम भूलते जा रहे थे। गांधीजी स्वयं चर्खा चलाने लगे। सारा देश इसमें लग गया। धीरे-धीरे लोग खादी पहनने लगे। लेकिन इसके पीछे जो भावना थी, उसकी नींव पर वे समाज की पुनर्रचना करना चाहते थे। आज वह भावना कमजोर होती जा रही है। आज हमारी रुचि भौतिक चीजों की ओर अधिक है और भावनात्मक-आध्यात्मिक चीजों की ओर कम। विनाश के साधनों से बचने का कोई उपाय नजर नहीं आता। लेकिन एक उपाय सूझता है और वह है अहिंसा। अहिंसा अहिंसा के रास्ते से ही आ सकती है, हिंसा के रास्ते से नहीं। कीचड़ से कीचड़ नहीं धुलता। कीचड़ धोने के लिए जल की आवश्यकता है। इसलिए हमें चाहिए कि हम गांधीजी के अहिंसा-मन्त्र को याद रखें। इसी में देश और मानवता का कल्याण है।

गांधीजी अनेकता में एकता के दर्शन करते थे। यह उनकी प्रकृति थी। वे अपने आचरण द्वारा शिक्षा देते थे कि हमें समय का पालन करना चाहिए। यदि वे

चौबीस घण्टों में दूसरों के बहत्तर घण्टों का काम कर सकते थे तो उसका कारण यही था कि वे निर्धारित समय से ही सब काम करते थे।

वे सबके सुख-दु:ख में सम्मिलित होते थे। किसी के भी वियोग पर वे सहानुभूति का सन्देश भेजते थे। सभी उनके पास जा सकते थे और अपनी समस्याओं का समाधान करा सकते थे। सत्यप्रियता, निर्भीकता और स्पष्टवादिता उनकी और विशेषताएँ थीं। वे दृढ़प्रतिज्ञ थे, सब कार्यकर्त्ताओं से निकट सम्बन्ध बनाये रखते थे, सब काम सुचारु रूप से कुशलतापूर्वक करते थे, वे अतीव परिश्रमी थे। वे बड़े-बड़े कामों में लगे रहते हुए और जटिल समस्याओं का समाधान करते हुए भी अपनी विनोद-वृत्ति का त्याग न करते थे। वे सदा हँसते-हँसाते रहते थे। वे सबसे प्रेम करते थे। वे सभी प्रकार के लोगों को अपनी ओर आकृष्ट करते थे। विरोधी भी उनका सम्मान करते थे।

स्वतन्त्रता-प्राप्ति के बाद उनकी प्रार्थनासभा के अहाते में बम-विस्फोट हुआ। लेकिन इससे वे तनिक भी उद्विग्न न हुए। वे निर्विकार थे। उनकी प्रार्थना-सभा नित्य नियमित रूप से होती रही। वे आरक्षी संरक्षण को नापसन्द करते थे। सचाई यह थी कि कोई कल्पना में भी यह नहीं सोचता था कि उनपर कोई आक्रमण करेगा। पूछा जा सकता है, क्या भारत-विभाजन की कल्पना किसी ने की थी? कौन जानता था, अकारण अप्रत्याशित-कल्पनातीत ढंग से भारत-विभाजन में सत्तर-अस्सी लाख लोग मारे जायेंगे और डेढ़ करोड़ लोगों को घर-बार, कुटुम्ब-परिवार छोड़कर विस्थापित होना पड़ेगा? गांधीजी ने स्वयं कहा था—"सोचता हूँ तो मेरा सिर चकराता है। यह सब हुआ कैसे? विश्व के इतिहास में ऐसी दुर्घटना कभी नहीं हुई, इसके कारण मेरा और आपका सिर शर्म से झुक जाना चाहिए।"

वस्तुतः हमारा सिर ३० जनवरी, १९४८ ई० की शाम के पाँच बजकर पाँच मिनट पर शर्म से झुक गया। गांधीजी, उपवास के बाद जिनकी दुर्बलता दूर नहीं हुई थी, अपनी पोती और पोते की बहू का सहारा लेकर प्रार्थना-सभा में जा रहे थे। अकस्मात् एक युवक आगे बढ़ा, बापू के चरणों में झुका और घुटने टेककर अजातशत्रु पर धाँय-धाँय गोलियाँ दागने लगा। गांधीजी ने हाथ जोड़े, 'हे राम!' कहा और धराशायी हो गये। क्या इतना बड़ा दुष्काण्ड इतने ओछे हाथों कभी हुआ? लेकिन 'जरा' नाम के व्याध के हाथों द्वारकाधीश के गोलोक जाने की बात भी कुछ ऐसी ही है।

महाभारत के वैभवकाल में स्वर्ण-द्वारका-अधीश्वर श्रीकृष्ण और परतन्त्र भारत की छोटी-सी सुदामापुरी में जन्मे रामभक्त जनसेवक श्री मोहनदास करमचन्द गांधी के महाप्रयाण में समानता देखना समसामयिक को पौराणिक बनाने की व्यर्थ चेष्टा होगी। गांधीजी के जन्म-मरण के बीच एक अद्भुत साम्य देखना ही पर्याप्त होगा। उनका जन्म २ अक्टूबर, १८६९ ई० के दिन एक ऐसे स्थान में हुआ था जिसके एक ओर श्रीकृष्ण का मन्दिर था और दूसरी ओर श्रीराम का, और मरण हुआ सन्ध्या की प्रार्थना-सभा में। एक सामान्य बालक के जन्म और एक महामानव के देहोत्सर्ग में साम्य का एक ही तथ्य हो सकता है कि प्रत्येक नर में नारायण का निवास है।

गांधीजी की जन्मभूमि पोरबन्दर है जो एक बन्दरगाह है। यह भारत के पश्चिमी समुद्र-तट पर स्थित है। इसका प्राचीन नाम सुदामापुरी है जिसका सम्बन्ध कृष्ण-सुदामा की पौराणिक कथा से है। यह गुजरात राज्य के सौराष्ट्र अंचल में स्थित है। सौराष्ट्र का इतिहास बहुत पुराना है। यह समुद्र-तट पर कृष्ण द्वारा बनाई गयी द्वारकापुरी थी। यहीं सोमनाथ का मन्दिर है।

स्वतन्त्र भारत की स्थापना से पूर्व सौराष्ट्र में छोटी-बड़ी अनेक देशी रियासतें थी। ऐसी ही एक रियासत पोरबन्दर की थी। गांधीजी के दादा उत्तमचन्द और पिता करमचन्द इस रियासत के दीवान थे और दोनों अपनी कार्य-कुशलता, ईमानदारी, स्वाभिमान, ज्ञान और नेक चाल-चलन के लिए विख्यात थे एवं दरबार और प्रजा में दोनों की प्रतिष्ठा थी।

उत्तमचन्द गांधी रामभक्त थे। उनके घर में गोस्वामी तुलसीदास के 'रामचरित मानस' का नियमित पाठ होता था। मोहनदास करमचन्द गांधी ने अपनी आत्मकथा में लिखा है कि मेरे मन पर रामायणपाठ का बहुत गहरा प्रभाव पड़ा था जो अमिट रहा।

गांधीजी बहुत बड़े द्रष्टा, ऋषि, योद्धा और कवि थे जो चिन्तन की घड़ियों को क्रिया से तोलते थे। वे जब बोलते थे तब लोक-जीवन की करुणा के कोटि-कोटि स्वर पुरुषार्थ के संकेत बनकर फूटते थे और उनकी क्रिया में टूट पड़ते थे। वे विश्व के अनहोना काव्य थे। जब उनकी कलम उठती थी तब भाषा का सुहाग और देश का भाग्य लिखती थी। देश की दलित पीढ़ियाँ उनके अन्तःकरण में पुकार उठती थीं। उनके सेना न थी लेकिन उनकी बात राजाज्ञा की तरह पाली जाती थी। उनके गद्दी न थी लेकिन उनकी बात धर्माधीश के आदेश की तरह मस्तक झुकाकर स्वीकार की जाती थी। कवि ने ठीक ही लिखा है :—

"ओ फकीर, सम्राट् बना तू, सिर पर लेकिन ताज नहीं।
ओ भिक्षुक, तू भूप बना पर वसुधा, वैभव, राज नहीं।।"

उनके स्वर में माधुर्य न था किन्तु उनकी बात सुनकर सहस्र-सहस्र मस्तक डोल उठते थे। वे धनिक न थे किन्तु उनकी बात पर सहस्र-सहस्र पाथियों और शत-शत संस्थाओं की रक्षा के लिए धन बरस पड़ता था। उनका ईमान अपूर्व था, बलिदान अपूर्व था और कीर्ति अपूर्व थी। उनके नेत्रों में दुखियों के लिए प्यार था। उनकी साँसों में ज़रूरतमन्दों की झंकार सुनाई पड़ती थी। उनकी मुद्राओं में विश्व के परिवर्तन की मनुहार होती थी और स्वरों में साम्राज्य-प्रकम्पक हुंकार। वे महान् मानव-काव्य थे या काव्य-मानव थे।

कमला जी का उत्तर था — 'यह [illegible] है। बापूजी की सेवा से ही राष्ट्र से
...लों पर संकट में [illegible] की थी। [illegible] ने पूरी को [illegible] की साड़ी [illegible]
...ी और बापूजी [illegible] के [illegible]। इन्दिराजी प्रसन्न हो गयीं। वे अपनी
...के द्वारा अंग्रेजों को भगाने का स्वप्न देखने लगीं। [illegible] और उन्होंने
...ी उनकी और बड़े-बड़े नेताओं का भी [illegible] गया।

इन्दिराजी ने बचपन में विदेशी वस्त्रों की होली जलती हुई देखी थी। इसलिए
...र हृदय में देश-प्रेम स्वाभाविक रूप से जागृत हुआ था। एक बार उन्होंने सुन्दर
...सी फ्रॉक और गुड़िया का बहिष्कार भी किया था। परिस्थितियों ने उनके देश-प्रेम
...रल और गाढ़ा किया।

उन्होंने बचपन में ही तीन बार विदेशों की यात्रा की थी। वे स्विट्ज़रलैण्ड में
...महीनों तक रहीं। वहाँ उन्होंने पढ़ाई-लिखाई भी की। वे स्विट्ज़रलैण्ड के प्राकृतिक
...र्य को देखकर विस्मित थीं, किन्तु उन्हें अपने देश की स्मृति सताती थी। लंका-
...न महात्मा बुद्ध के शिष्यों के पुनीत स्थानों का प्रभाव उनके हृदय पर अमिट रूप से
...ा था। देश-विदेश की यात्रा ने उनके ज्ञानरूपी पक्षी को अनन्त उड़ान भरने को
...सीम आकाश प्रदान किया।

उनकी प्रारम्भिक शिक्षा की व्यवस्था उनके घर में ही हुई। इसका श्रीगणेश
...होंने अंग्रेजी से किया था किन्तु वे हिन्दी भी पढ़ती थीं। हाई स्कूल की परीक्षा उन्होंने
...र से पास की थी। इसके उपरान्त वे 'शान्ति निकेतन' में प्रविष्ट हुईं। वहाँ उन्होंने
...ावलम्बन का जीवन जिया। वे 'शान्ति निकेतन' के कठोर नियमों के पालन में तनिक
... पीछे नहीं रहीं। उनके पथ आदर्श बन गये। एक बार 'शान्ति निकेतन' में किसी
...ड़की के आभूषण चोरी चले गये। एक लड़की का सुझाव था कि इन्दिराजी के ट्रंक
...ो छोड़कर हर लड़की के ट्रंक की तलाशी ली जाय। लेकिन यह बात इन्दिराजी को
...सन्द न आई। उन्होंने अपना ट्रंक खोलकर पहले ही औरों को दिखा दिया।

उन्होंने 'शान्ति निकेतन' में विश्वकवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर के आदेश पर मणिपुरी
...त्य की शिक्षा ली। 'शान्ति निकेतन' के अर्थाभाव को दूर करने के लिए नृत्यकला-प्रवीण
...ड़कियों की जो टोली निकली थी उसका नेतृत्व इन्दिराजी को सौंपा गया था, लेकिन
...ाता की अस्वस्थता-सूचक तार की प्राप्ति के बाद इस टोली के नेतृत्व का उन्होंने
...याग किया। इस प्रकार जब 'शान्तिनिकेतन' से वे चली आईं तब स्वाध्याय के बल पर
...ध्ययन करती रहीं। उन्होंने विभिन्न विषयों का ज्ञान प्राप्त किया।

जब उनकी माता जर्मनी और स्विट्ज़रलैण्ड में स्वास्थ्य-लाभ के लिए गयीं
...ब वे उनकी सेवा-सुश्रुषा में लगी रहीं और २८ फरवरी, १९३६ ई० में अपनी माता
...े स्वर्गवास होने का मर्मान्तक शोक सहा। वे अपने पिता के साथ भारत नहीं लौटीं
...रन् लन्दन चली गयीं। लन्दन में 'ऑक्सफोर्ड विश्वविद्यालय' में वे पढ़ने लगीं। वे वहाँ
...ीमित व्यय में जीवन-यापन और शिक्षा ग्रहण करती थीं। वे वहाँ सभी प्रतियोगिताओं
...ें भाग लेती थीं और अपनी छाप सबमें छोड़ती थीं। भारत की परतंत्रता उनके हृदय
...ें काँटों की तरह चुभ रही थी। जब यूरोप में लड़ाई की ज्वाला सुलगी, वे अपने पिता

के साथ भारत में आ गयी। पुनः कुछ दिनों के उपरान्त वे लन्दन चली गयी और 'ऑक्सफोर्ड विश्वविद्यालय' में पढ़ने लगीं। सहसा उनका स्वास्थ्य गिरने लगा। वे स्विट्ज़रलैण्ड चली गयी। जब उनका स्वास्थ्य सुधरा, वे लड़ाई के खतरों की अवहेलना कर भारत चली आयीं।

उनका विवाह मार्च, १९४१ ई० में श्री फ़िरोज़ गांधी के साथ सम्पन्न हुआ। विवाह के पूर्व दोनों एक-दूसरे को अच्छी तरह से जानते थे। कमलाजी की सेवा-शुश्रूषा में इन्दिराजी का हाथ श्री फ़िरोज़ गांधी भी बँटाते थे। जब कमलाजी अन्तिम रोग में रही थी, फ़िरोज़ गांधी भी वहाँ उपस्थित थे। वे बहुत उच्च विचारों के व्यक्ति थे। उनमें देश-भक्ति और सेवा-भावना का मणि-कांचन संयोग था।

१९४२ ई० में जब 'भारत छोड़ो आन्दोलन' का श्रीगणेश हुआ, पंडित जवाहरलाल नेहरू इन्दिराजी के साथ प्रयाग चले गये। नेहरूजी प्रयाग में गिरफ्तार हो गये। श्री फ़िरोज़ गांधी लखनऊ में कांग्रेस का काम छिपकर करने लगे। इन्दिरा गांधी भी लखनऊ चली गयीं। एक बार कांग्रेसी छात्रों ने लखनऊ में एक कॉलिज के भवन पर तिरंगा ध्वज फहराने का निश्चय किया और इन्दिराजी को भी निमंत्रित किया। ऐन मौके पर पुलिस आ गयी। उसने छात्रों को लाठियों से पीटना आरम्भ किया। इन्दिराजी ने पुलिस के अत्याचारों को देखकर पुलिस को बड़े ज़ोर से डाँटा, पर पुलिस लाठियाँ चलाती ही रही। पुलिस और लड़के तिरंगे झण्डे के लिए छीना-झपटी कर रहे थे। जब लड़के लहू-लुहान हो गये और आखिरी लड़का भी लाठियों से बेहोश हो गया तब इन्दिराजी दौड़ उठीं और तिरंगे झण्डे को अपने हाथों में ले लिया। जब इन्दिराजी ने झण्डे को नहीं छोड़ा तब पुलिस ने उनपर भी कई लाठियाँ बरसायीं। इसपर इन्दिराजी ने गरजकर कहा—"मैं नेहरू हूँ, मैं मर जाऊँगी, पर झण्डे को छोड़ूँगी नहीं।" और उन्होंने झण्डा नहीं छोड़ा। उनके साहस के सामने पुलिस ने भी मात खाई।

कुछ दिनों के उपरान्त लखनऊ की एक सार्वजनिक सभा में भाषण करते हुए पुलिस ने उन्हें गिरफ्तार किया। जेल में उन्होंने सहनशीलता और साहस के साथ अपने जीवन के क्षण बिताये। वे जब तक जेल में थीं, अनपढ़ स्त्रियों को पढ़ाती थीं।

कहते हैं, एक बार एक व्यक्ति छुरा लेकर चुपचाप नेहरूजी की कोठी में प्रविष्ट हुआ। अचानक इन्दिराजी की नज़र उसपर गयी। वह इन्दिराजी की ओर झपटा, परन्तु इन्दिराजी ने उसे ऐसा धक्का दिया कि उसके हाथ का छुरा गिर गया और इन्दिराजी ने उसे उठा लिया। तब तक सिपाही आ गये और आक्रमणकारी को पकड़ लिया। इस प्रकार उन्होंने निर्भयतापूर्ण अनेक कार्य सम्पादित किये हैं। उनमें शौर्य, शक्ति और सौन्दर्य का अपूर्व समन्वय है। वस्तुतः वे शक्ति-स्वरूपिणी हैं।

जब तक उनके पति जीवित थे, वे उनके साथ रहती थीं। जब उनके पति का स्वर्गवास हो गया, वे अपने पिता के साथ रहने लगीं। वे अपने पिता के खाने-पीने की ही व्यवस्था नहीं करती थीं, विदेशियों से उनके मिलने-जुलने की भी व्यवस्था करती थीं और अपने पिता को परामर्श भी देती थीं। इस प्रकार [illegible] के जीवनकाल

न्होंने जो ज्ञानानुभव प्राप्त किया, वह अमूल्य था। इस ज्ञानानुभव ने उनके राज-
क जीवन में महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा की है।

१९५९ ई० में उन्होंने कांग्रेस की अध्यक्षा के रूप में देश की स्तुत्य सेवाएँ की
। १९६४ ई० में जब उनके पिताजी स्वर्गवासी हो गये तब उनका हृदय चूर-चूर
या। श्री लालबहादुर शास्त्री के प्रधानमंत्रित्व-काल में इन्दिराजी सूचना-
रण-मंत्री थी। १९६६ ई० मे वे प्रधानमंत्री के पद पर प्रतिष्ठित हुई। जब उन्होंने
नमंत्री का पद सँभाला था तब कुछ लोग कहते थे कि उनकी सरकार टिकाऊ न
, किन्तु समय ने सिद्ध कर दिया कि वस्तुतः वे ही सरकार का टिकाऊपन हैं।

उनकी सूझबूझ अप्रतिम है। उन्होंने अपने मंत्रित्व-काल में अनेक देशों का
न किया है और जहाँ भी वे गयी हैं, उनका अपूर्व स्वागत हुआ है। यह उनकी
प्रियता का सबल प्रमाण है।

उन्होंने बैंकों के राष्ट्रीयकरण के द्वारा अनोखी साहसिकता का परिचय दिया है।
७० ई० में जब कांग्रेस दो दलों में बँटी, तब ऐसा लगता था कि कांग्रेस की सारी
नी-शक्ति समाप्त हो गयी, किन्तु १९७१ ई० में जो मध्यावधि निर्वाचन हुए
श्रीमती गांधी की जो विजय हुई है वह सिद्ध करती है कि वे भारत की सर्वश्रेष्ठ
वशीला नारी हैं। वे भारत से 'गरीबी हटाओ आन्दोलन' का सफल संचालन करेंगी,
दो मत नहीं हो सकते।

उनसे मेरा परिचय पुराना है। ११-११-६६ ई० को उन्होंने मुझे लिखा था:
य श्री सुहृद जी,

*पटना हवाई अड्डे पर आपने जो पुस्तक 'मेरे अपने' की प्रति मुझे दी थी, उसे
यहाँ आकर देखा। व्यस्त रहने के कारण पुस्तक ध्यान से तो न पढ़ सकी, किन्तु
भी पढ़ा, उसे भावपूर्ण पाया।*

आपको धन्यवाद व मेरी शुभ कामनाएँ।

आपकी
इन्दिरा गांधी"

यह पत्र इस बात का प्रमाण है कि वे व्यस्त राजनैतिक जीवन से भी अध्ययन
छ क्षण निकाल लेती हैं। हमारी कामना है, वे शतायु हों और देश, समाज तथा
की सेवा अपने मन और आत्मा की सभी स्वस्थ वृत्तियों से करें।

'भारतरत्न' श्रीमती इन्दिरा गांधी नयी रोशनी लायी हैं देश में। उनकी
त्मक शक्ति की जितनी प्रशंसा की जाय थोड़ी होगी। उनकी कार्यपद्धति जितनी
ना-बद्ध होती है वह भारतीय राजनीति में दुर्लभ है। उनकी दृढ़ता और साहसिकता
राजनीतिज्ञों से उन्हें पृथक् करती है। मध्यावधि चुनाव के समय भारतीय
न के अपहरण के मामले में उन्होंने जिस नीति का अवलम्बन किया उसने याहिया
भुट्टो को चक्कर में डाल दिया क्योंकि भुट्टो ने 'द ग्रेट ट्रेजेडी' नामक पुस्तक में
रा है कि हम लोगों ने श्रीमती इन्दिरा गांधी को इतना दमदार नहीं समझा था।

पूर्व बंगाल से जब शरणार्थियों का तांता भारत में आने लगा, तब सर्वप्रथम भारत सरकार ने निर्णय किया कि उनका आगमन रोका जाय। लेकिन जब शरणार्थियों की करुण दशा की बात श्रीमती इन्दिरा गांधी को ज्ञात हुई, तब उनका नारी-हृदय करुणार्द्र हो उठा। उन्होंने शरणार्थियों को न केवल अपने देश में आने दिया वरन् उनके भोजन, निवास आदि की भी व्यवस्था की। उनकी समझ-बूझ का लोहा सारा संसार मानता है। भारत-सोवियत-संधि, बांगला देश के शरणार्थियों की समस्या का समाधान, बांगला देश को पाकिस्तानी पंजे से मुक्ति दिलाने के लिए फौजी कार्रवाई आदि इस बात के प्रत्यक्ष प्रमाण हैं। याहिया खां जिन्हें 'औरत' समझते थे, वे सामान्य औरतों से भिन्न साबित हुईं। उन्होंने याहिया खां की सैनिक चालों में हर नहले पर दहला जमाया। उन्होंने बांगला देश को समय पर मान्यता दी। इसके पूर्व उन्होंने देश को आश्वस्त किया था कि समय पर बांगला देश को मैं मान्यता दूंगी। इस आश्वासन से कुछ लोगों को सन्तोष नहीं था, किन्तु समय ने सिद्ध किया कि वे देश को जो आश्वासन देती हैं उसे वे अवश्य पूरा करती हैं। यही कारण है, उनकी हर बात में समग्र देश विश्वास करता है। उनकी दृढ़ संकल्प-शक्ति का यह प्रमाण है कि जब वे अक्तूबर ७१ में रूस से लौटी तो भारत में कहा—"शरणार्थियों को वापस जाना ही होगा और इसके लिए जो हालात जरूरी हैं, वे पैदा करने ही होंगे।" अमेरिका जाते समय उन्होंने लन्दन में कहा—"मैं जानती हूँ कि मेरे देश के हित में क्या है और मैं वही करूँगी।" अमेरिका में औपचारिक अभिनन्दन से वे सर्वथा अप्रभावित रहीं। उनका स्वर सबल था, पर आक्रामक नहीं। निक्सन साहब ने सोचा था कि श्रीमती इन्दिरा गांधी युद्ध में मुँह की खायेंगी, किन्तु समय ने सिद्ध किया कि श्रीमती गांधी से सबने मुँह की खायी। सीमा पर जो हताहत होते थे, श्रीमती गांधी उनके परिवारवालों को व्यक्तिगत रूप से संवेदना-पत्र भेजती थीं। यह इस बात का प्रमाण है कि वे हर बात पर ध्यान रखती हैं।

युद्ध में उन्होंने जो कुछ किया, अपनी बुद्धि से किया और बांगला देश की उन्मुक्ति के बाद उन्होंने युद्धविराम की इकतरफा घोषणा के पूर्व प्रतिपक्षियों की भी राय ली। सबने सब स्थितियों में उनकी राय मानी। श्रीमती गांधी ने संकट का रोना नहीं रोया। उनकी नींद कभी हराम नहीं हुई। उन्होंने समस्या को सही परिप्रेक्ष्य में जनता के सामने पेश किया। उन्होंने दृढ़ता से युद्ध-संचालन किया। वे छह बजे उठती थीं और आठ बजे रक्षाकोष के लिए धन माँगने को मैदान में आ जाती थीं। वे पौने नौ बजे तीनों सेनाध्यक्षों को बुलाती थीं और विभिन्न मोर्चों की जानकारी हासिल कर जरूरी निर्देश देती थीं। वे प्रतिदिन मंत्रिमण्डल की बैठक बुलाती थीं। सुरक्षा-परिषद् में ब्रिटेन और फ्रांस ने अमेरिका का साथ नहीं दिया था। इसके पीछे श्रीमती गांधी की सच्ची नैतिक सफलता थी। वे न चीनी धमकियों से विचलित हुईं, न हिन्द महासागर में अमरीकी सातवें बेड़े के आगमन से। उन्होंने श्री निक्सन को जो पत्र लिखे वे उनकी निर्भयता के सबल प्रमाण हैं। उन्होंने बांगला देश के मुक्ति-संग्राम के कार्यक्रम सफलता-पूर्वक सम्पन्न किये। इस क्रम में उन्होंने देश को स्मरण दिलाया कि सर ऊँचा रखने की खातिर सर कटाने को भी कटिबद्ध रहना होता है। उन्होंने आर्थिक और वैचारिक आत्म-

निर्भरता पर बल देकर देशवासियों को राष्ट्रीय नियति का ज्ञान कराया और नव जागरण का शंख फूँका। महाभारत-युद्ध अठारह दिनों तक चला था किन्तु बांगला मुक्ति-संग्राम केवल चौदह दिनों तक। उनका मत है कि शौर्य-गाथाएँ चारणों की तरह दुहराने से देश का कल्याण नहीं होता, कल्याण होता है शौर्य दिखलाने से। यहाँ वे लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक के विचार को आत्मसात् करती हुई प्रतीत होती हैं। वे जहाँ यह मानती हैं कि मनुष्य को अतीत के प्रति कृतज्ञ और भविष्य के प्रति कर्तव्यनिष्ठ होना चाहिए, वहाँ वे पंडित जवाहरलाल नेहरू की सच्ची उत्तराधिकारिणी प्रतीत होती हैं। उन्होंने अपने पिताजी से यह सीखा है कि कुछ लोग कुछ करने से इसलिए घबराते हैं कि कुछ करने का अर्थ है खतरा उठाना, लेकिन जो खतरा बड़ा भयानक प्रतीत होता है, पास आकर मित्र बन जाता है और जीवन को आनन्द से भर देता है।

उन्होंने अपने पिता के पत्रों में इतिहास की झलकें देखी थीं; लेकिन वे स्वयं इतिहास निर्मात्री बन गयीं। अपने छह वर्षों के शासन-काल में उन्होंने देश को नया जीवन दिया है, कांग्रेस का कायाकल्प किया है, राष्ट्र को राष्ट्र-बोध दिया है, एशिया को साम्प्रदायिकता की राजनीति से मुक्ति दिलायी है और एशियाई महाद्वीप को विश्व-राजनीति के मंच पर विशिष्ट स्थान पर प्रतिष्ठित किया है। उनकी ये वैयक्तिक विशेषताएँ उनके व्यक्तित्व को असाधारणता प्रदान करती हैं। पंडित नेहरू के जीवन-काल में लोग इस प्रश्न के उत्तर नहीं खोज पाते थे कि पंडित नेहरू के बाद उनके सच्चे उत्तराधिकारी कौन होंगे? किन्तु श्रीमती इन्दिरा गांधी ने सिद्ध कर दिया कि उनकी उत्तराधिकारिणी उनकी अपनी आत्मजा हैं। वे आज देश की एकमात्र नेता हैं, इसमें किसी को सन्देह की गुंजाइश नहीं है।

●

महाकवि महाराजाधिराज नेपाल-नरेश श्री महेन्द्र

लम्बा कद, इकहरा शरीर, गोरा रंग, प्रशस्त ललाट, भव्य मुख-मण्डल, लम्बे-लम्बे कान, लम्बी नासिका, आँखों में तेजस्विता, ऐसे थे महाकवि नेपाल-नरेश श्री महेन्द्र। वे मिलनसारिता की मूर्ति थे। उनके इस गुण की छाप हृदय पर अमिट रूपों में पड़ती है। वे मिष्टभाषी थे और मधुरभाषी भी। उनके इस गुण के सब कायल हैं। वे धैर्य की अटल प्रतिमा थे। यही कारण है, वे कार्यों की अधिकता से कभी अपना धैर्य नहीं खोते थे। इनमें सन्तुलन का प्राचुर्य था। वे सदा प्रकृतिस्थ होकर कार्य करते थे। वे समय का सदुपयोग करते थे। एक क्षण भी वे व्यर्थ व्यतीत नहीं करते थे। उनकी मान्यता थी—'आराम हराम है।'

वे विनीतता के प्रतीक थे। वे सबसे हिल-मिलकर बातें करते थे। वे लक्ष्मी के लाड़ले थे और सरस्वती के भी वीर-पुत्र थे। लेकिन अभिमान उन्हें छू तक नहीं गया था। वे आपादमस्तक निरभिमान थे। उनके निजी आचरण में न अस्वाभाविकता थी, न कृत्रिमता। वे आन्तरिक और बाह्यरूप में एक थे। वे जो सोचते थे वही कहते थे और जो कहते थे वही करते थे। वे स्वाभाविक ढंग से जीवन जिये। वे कर्म की उपासना मानते थे। वे किसी भी स्थिति में परावलम्बी होना पसन्द नहीं करते थे।

वे प्रथम कोटि के विचारक, कवि, चिन्तक, दार्शनिक, राजनीतिज्ञ थे। उनके इन व्यक्तित्वों में भावुक का व्यक्तित्व भी सम्मिलित था। उनके अनेक व्यक्तित्वों की विशेषताएँ स्व-अर्जित थीं और प्रकृति-प्रदत्त भी। उन्होंने महत्ता अर्जित भी की और उनकी महत्ता जन्मजात भी थी।

वे आडम्बरहीन थे। वे मिलनेवालों से उकताते नहीं थे। सबके साथ उनका व्यवहार सदा मृदु रहता था। वे सबसे समान भाव से मिलते थे और उन्हें स्वाभाविक स्नेह से मुग्ध कर देते थे।

उनकी शिष्टता-शालीनता अतुलनीय थी। वे अपने मित्रों के समक्ष जिस-जिस सद्भाव-स्नेह की वर्षा करते थे, उसमें तनिक भी कोताही अपने विपक्षियों के समक्ष नहीं करते थे। इस अर्थ में वे समदर्शी थे। वे जिस रूप में गंभीर थे उसी रूप में कर्त्तव्य-शील और दायित्ववान् थे। यही कारण है, वे परिचितों और अपरिचितों के श्रद्धा-

भावना थे। उनकी दार्शनिक-भावना की जितनी प्रशंसा की जाए, थोड़ी होगी। वे अतिशय उदार थे।

वे अपनी प्रजा के हृदय के सम्राट् रहे। उन्होंने जनराज्य में असीम जनप्रियता अर्जित की। वे जनता के दुःख-दर्द को दूर करने की चेष्टा में तनिक भी कोताही नहीं करते थे। उनके विचारों में विश्रृंखलता न थी। उनके विचारों में तारतम्य था और थी स्पष्टता क्योंकि

> सच्चाई की पहचान कि जानी जाती रहे,
> जो भी चाहे ले परख जनतन्त्र के मन को,
> गहराई का वे भेद छिपाते हैं केवल
> जो जान-बूझ मैला करते अपने मन को।

यही कारण है, उन्होंने नेपाल की सर्वतोमुखी उन्नति की। जिस क्षेत्र में भी उन्होंने कदम बढ़ाये थे, उन्हें आशातीत सफलता मिली। उनकी दृष्टि किसी पर अपनी धाक नहीं जमाती थी। वे अपने पाण्डित्य का प्रदर्शन नहीं करते थे, लेकिन थे बहुज्ञ। सर्वज्ञ एक ईश्वर है। नेपाली जनता उन्हें ईश्वर का अवतार मानती रही है। वस्तुतः उनमें ईश्वरीय गुणों का बाहुल्य था।

उनके कवि-व्यक्तित्व की धाराओं के तीन रूप हैं। पहली धारा है प्रेम की। इस प्रेम में विप्रलम्भोन्मुख शृङ्गार है और शृङ्गारोन्मुख विप्रलंभ भी। इन दोनों रूपों में वे रहस्यानुभूतियों की भी मार्मिक व्यंजना करते रहे। दूसरी धारा है राष्ट्रीयता की। वे नेपाल देश के नरनारियों के हर्षोत्फुल्ल आनन देखने के आकांक्षी रहे, जातिगत विद्वेष-विष के उन्मूलक रहे और समाज में समता की रचना के पक्षपाती रहे। वे नेपाल का निर्माण नये सिरे से करना चाहते थे। यह निर्माण जन-जन के लिए सुखद और कल्याणकर होगा—इस अर्थ में वे सर्वकल्याणकारी राजनेता रहे।

वे विश्व-बन्धुत्व की कामना के प्रचारक थे। वे नारी-स्वातंत्र्य के पक्षपाती थे। वे वर्ग-जाति की जटिलता के भंजक थे। वे आपाद-मस्तक देश-भक्त थे। उनकी देश भक्ति में विश्व-बन्धुत्व की भावना का प्राचुर्य था। वे प्रकृति-प्रेमी रहे। उन्होंने नेपाल की हिमानी प्रकृति में उद्भूत पादपों और वन-प्रसूनों के तथा वनस्थली-विहारी पशुओं और पक्षियों के सजीव चित्र अंकित किये जिनमें हार्दिक उन्मुक्तता और स्वस्थता की लहरें हिलोरें लेती हैं। वे चित्रात्मकता, स्वाभाविकता, मर्मस्पर्शिता और रहस्यवादिता का सर्वत्र अपूर्व संगम सृष्ट करते रहे जिसमें अवगाहन से मन, नयन और आत्मा तृप्त हो जाते हैं।

उन्होंने कबीरदास की इन पंक्तियों को सार्थकता प्रदान की—

> लीक छाँड़ि तीनों चलें,
> सायर, सिंह, सपूत।

उन्होंने कविता में प्रचलित छन्द-योजना का त्याग किया। उन्होंने नया मार्ग अपनाया। उन्होंने ऐसे अनेक शब्द प्रयुक्त किये जो नेपाली शब्दकोश में अनुपलब्ध

हैं। ये शब्द व्यंजनापूर्ण हैं। इस अर्थ मे वे अद्भुत शब्दशिल्पी थे, समाज के नव-निर्माता थे, देश के उन्नायक थे और मानवता के विधायक भी।

वे सुशासक रहे और कवि भी, गुणज्ञ रहे और गुणग्राही भी, शास्त्रज्ञ थे और नीतिज्ञ भी, राजनीति-पटु और प्रज्ञावान् भी। उनका व्यक्तित्व हिमालय की तरह अडिग-उत्तुंग था। जिस प्रकार हिमालय अपने अंचल के समस्त ताप को दूर करने-वाली अनन्त शीतलता सँजोये हुए निर्विकार रूप में स्थित है, उसी प्रकार उनका व्यक्तित्व नेपाल के समस्त पाप-ताप का विनाशक रहा। हिमालय की तरह उन्होंने अपने अतीत के मानसिकजीवन मे कितनी ज्वालाएँ, कितने मथन, कितने कर्षण-विकर्षण और कितने उत्प्लावन झेले, उनका वर्णन नही किया जा सकता। हिमालय बाह्य रूप से शान्त और शीतल है लेकिन उसके भीतर तपा-तपाकर कंचन में परिणत करनेवाली उद्दाम ऊष्मा निहित है। जो हिमालय अनन्त नैसर्गिक अवरोधो को तोड़-फोड़ महाकाल के वरदान से पाताल चीरता हुआ आकाश मे उभर आया है, क्या मानव के अहंकार से नमित हो सकता है ? उसका इतिहास बनता जा रहा है। महाकवि नरेश का इतिहास भी उसके समान विश्व-विख्यात होता जा रहा है।

महत्ता मस्तिष्क से नही, हृदय से उद्भूत होती है। महाकवि नरेश के व्यक्तित्व के अप्रतिम आकर्षण का मूल हृदय की समरसता रही है। अपने पूज्य पिता के स्वर्गारोहण पर श्राद्ध-क्रिया में स्वयं बैठना, तेरह दिनों तक जमीन पर पुआल पर सोना, परम्परानुसार अपने हाथो से जल ढोकर लाना तथा अपने हाथो से भोजन पकाना—यह साधारण आदर्श की स्थापना नही है। हर हिन्दू अपने हिन्दू राजा से यही आशा करता है। वस्तुतः वे पहले हिन्दू थे और तब राजा। वे पहले मनुष्य थे और तब हिन्दू राजा। उनके माता-पिता अपने सुयोग्य कर्तव्यपरायण सुपुत्र से यही आशा करते रहे होंगे।

उनका जीवन श्रममय था। वे कार्य-कुशलता के मर्मज्ञ ज्ञाता थे। वे सच्चे कर्म-योगी थे और हिन्दू राजनीति के आदर्शों के ज्ञाता थे। अपने मन की बातें छिपाये रखना और दूसरो की सुनते जाना—यह राजनीतिज्ञता है और इसमें वे कुशल थे। वे शरीर से संयमी थे। वे सुरुचि-सम्पन्नता के कायल थे।

उनके पारिवारिक और सामाजिक जीवन में राम का जीवनादर्श दृष्टिगोचर होता है। राम के उच्चारण से वे दिवसारम्भ करते रहे। राम के समान ही वे वज्र की तरह कठोर थे और फूल की तरह मृदु भी। स्वजन-परिजन-पुरजन सबके साथ उनका सम्बन्ध स्नेह-प्रेममय रहा। वैयक्तिक जीवन में वे आस्तिक थे और परम्परा के पालक थे। वे मर्यादित जीवन-निर्वाह मे राम की, करुणामयी दृष्टि में अशोक की, कठोर संयमित जीवन-यापनसहित अचल धैर्य से प्रतिज्ञा-पालन में राणा प्रताप की, और धार्मिक आस्था, समर्पण एवं हिन्दू राष्ट्र के निर्माण के संकल्प मे शिवाजी की याद दिलाते हैं। विकट-से-विकट परिस्थिति का सामना करने एवं बुद्धिमत्तापूर्ण समाधान ढूँढने की जो क्षमता उनमें थी, वह अपूर्व है।

जिस प्रकार शिव का हृदय हिमालय है, उसी प्रकार हिमालय का हृदय नेपाल है और उसकी आत्मा श्री महेन्द्र थे। वे त्रिदेव थे, जिनके तीन रंग, तीन आयतन और नर-रूप में तीन प्रतिमाएँ हैं। ब्रह्मा, शिव और विष्णु—ये त्रिदेव नेपाल में क्रमश: स्वयम्भूनाथ, पशुपतिनाथ और मत्स्येन्द्रनाथ के तीन आयतनों में प्रतिष्ठित हैं। ये तीनों ज्ञान, कल्याण और सृजन के विधाता हैं जो नील, काषाय और सघन हरित रंगों के प्रतीक में व्यवस्थित हैं। ये चन्द्र, शिव और सूर्य तथा सत्, चित् और आनन्द हैं। प्राचीन काल में अन्य महापुरुष रहे होंगे, आधुनिक काल के नर-रूप में प्रतिनिधि महाराजाधिराज पृथ्वीनारायणशाह, भानुभक्त तथा महाराजाधिराज श्री महेन्द्र वीर विक्रम शाह कहे जा सकते हैं।

ता० १२ जून १९६८ ई० को महाकवि नेपाल-नरेश के शुभ जन्मोत्सव पर 'नेपाल साहित्य संस्थान' के निमंत्रण पर डॉ० लक्ष्मीनारायण सुधांशु, डॉ० शिवमंगल-सिंह और मैं उत्सव में भाग लेने के लिए काठमाण्डू (नेपाल) गये थे। उस अवसर पर श्री विष्णुदेवनारायणजी (बेगूसराय के रईस), श्री अरविन्द कुमार "अरविन्द", श्री दीप कुमार, श्री गणेशबहादुरसिंह गए थे। महाकवि नेपाल-नरेश के शुभ जन्मदिवस में बड़े उत्साह के साथ हम लोगों ने भाग लिया। नेपाल की ओर से हम लोगों का काफी सम्मान हुआ। हर तरह का इन्तजाम था ताकि बाहर से आए हुए अतिथियों को किसी प्रकार की कोई असुविधा न हो। जितने उत्सव हुए, हम लोगों ने बड़े ही सोल्लास भाग लिया। वहाँ के नये-पुराने, परिचित-अपरिचित सभी लोगों से मिले।

ता० १२ जून १९६८ ई० को संध्या-समय 'शीतल निवास' में महाकवि महा-राजाधिराज नेपाल-नरेश का शुभ जन्म-उत्सव बड़ धूमधाम से मनाया गया। देश-विदेश के लोग उस शुभ अवसर पर पधारे थे, 'शीतल भवन' में बहुत बड़ी पार्टी हुई, वहीं पर महारानी रत्ना से, कविवर व्यथितजी ने हम लोगों का परिचय कराया था। पार्टी के बाद हम सब ऊपर दोमंजिला पर गए। महाकवि महाराजाधिराज नेपाल-नरेश से मेरा परिचय कराया गया। उस शुभ अवसर के लिए मैंने नीचे लिखी हुई कविता, महाकवि महाराजाधिराज नेपाल-नरेश को दी। उन्होंने बड़े प्रेम से इस कविता को पढ़ा। उसके बाद कविता वगैरह के विषय में बातें हुईं। उस शुभ अवसर का वहाँ-वालों ने हम दोनों का चित्र भी खींचा।

युग युग नेपाल-नरेश जियो,
नेपाल रहे गौरवशाली !
तुम जियो वीर पृथ्वी त्रिभुवन की आत्मा के वरदान जियो !
तुम जियो हिमालय की धरती के कर्म-कुशल दिनमान जियो !
हे चन्द्रगुप्त के शौर्य जियो, हे बुद्ध देव के ज्ञान जियो !
नेता, सेवक, साथी जनता के, गति-मति-आशा-प्राण जियो !
तुम जियो नरेशों के नरेश, नेपालभूमि के वनमाली !
युग युग नेपाल-नरेश जियो, नेपाल रहे गौरवशाली !

तुम जियो कि यह नेपाल अभी निर्माण माँगता है तुमसे !
अभिशप्त युगों का ग्राम-जगत वरदान माँगता है तुमसे !
अनुभव के धनी जियो जनगण आह्वान माँगता है तुमसे !
तुम जियो, विरोधी भी अपना कल्याण माँगता है तुम से !
तुम जियो क्षमा के पिता, लिये अपनी मुस्कानों की लाली
युग युग नेपाल-नरेश जियो नेपाल रहे गौरवशाली
हे अमर महाकवि पावनता सुन्दरता के शृङ्गार जियो
त्रिभुवन की ज्योति महालक्ष्मी रत्ना के प्राणाधार जियो
हे वीरों के वीरत्व जियो, प्रेमी भक्तों के प्यार जियो
हे निश्चलता के सूर्य जियो, मिट जाये कपट-निशा काली
युग युग नेपाल-नरेश जियो, नेपाल रहे गौरवशाली

ता० १३ जून १९६८ ई० को डॉ० सुधांशु और मैं भारतीय दूत महामहिम श्री राजबहादुरजी से (अब मंत्री, भारत) डेढ़-दो घंटे बात चाय वगैरह भी चलती रही। ता० १६ जून तक हम लोगों को वहाँ लेकिन मेरा कार्यक्रम दूसरी जगह जाने का था। डॉ० सुधांशु को मैंने कहा कि (कल) ता० १४ जून को यहाँ से चलिए।

कविवर व्यथितजी आए तो मैंने अपनी इच्छा उनसे व्यक्त की। मेरे प्रबल आग्रह से उन्होंने हम दोनों को जाने की अनुमति दे दी। छ. बजे 'श्री त्रिभुवनविश्वविद्यालय' में हम लोगों के स्वागतार्थ आयोजन था। वहाँ हम लोग गए। वहाँ के विद्यार्थियों के बीच दो-दो शब्द बोले। उसके बाद हम लोग भक्तपुर में राष्ट्रीय पंचायत में गए जहाँ हम लोगों का अभिनन्दन किया गया और डॉ० सुधांशु के सभापतित्व में एक कवि-सम्मेलन भी हुआ। वहाँ से हम लोग भारतीय दूतावास गए और चाय-पार्टी में सम्मिलित हुए। उसके बाद वहाँ से सात बजे हम लोग 'नेपाली साहित्य संस्थान' के उत्सव में गए जो काठमाण्डू से चार मील उत्तर 'बालाजू पार्क के' ऊपर नागार्जुन पर्वत पर आयोजित था। इसी स्थान पर वहाँ के नेपाली जातीय कवि श्री भानुभक्त ने रामायण लिखा था। उनका जन्म सम्वत् १८७१ में, मृत्यु सम्वत् १९२५ में हुई थी। जिस प्रकार भारत में वृन्दावन (मैसूर) में नदी को बाँधकर तटबन्ध बनाए गए हैं उसी प्रकार यहाँ झरनों को बाँधकर अनेक सुन्दर लॉन बनाए गए हैं। इस बालाजू के ऊपर नागार्जुन पर्वत पर एक सुन्दर मकान है, वहीं पर कवि-सम्मेलन दो बजे रात तक चलता रहा। उसके बाद हम लोगों को महामहिम श्री राजबहादुरजी होकर होटल पहुँचा गए। हम उनकी सरलता और निरहंकार देखकर मुग्ध हो गये।

ता० १४-६-६८ को हम लोग हवाई अड्डे पर पहुँचे। वहाँ बड़ा कोलाहल था। हम लोगों को विदा करनेवालों की भीड़ थी। नेपाल एयरलाइन का जहाज आया। कविवर व्यथितजी ने हम लोगों को पुष्पमालाएँ पहनाईं, मानो भारत-नेपाल-सौहार्द को उन्होंने मालाओं में गूँथा हो। हम लोगों ने दोनों देशों का जय-जयकार किया— जय भारत, जय नेपाल ! जहाज पर चढ़ने समय मैंने अपने नेपाली मित्रों से कहा—

"हम लोग सम्पूर्ण भारत की ओर से यहाँ भारत की प्रेम, मातृत्व-भाव, मित्रता और शान्ति का सन्देश लेकर आए थे और यहाँ से सम्पूर्ण नेपाली भाइयों की ओर से यही भार लिये जा रहे हैं। नेपाल एयरलाइन से हम लोग सवेरे ११ बजे के लगभग पटना पहुँच गए। श्री रवीन्द्रनारायणजी (बी० एस-सी० इञ्जिनियरिंग) को फोन किया वे गाड़ी लेकर आ गए। डॉ० सुधांशु अपने डेरे पर रह गये ; मैं मुहल्लानगर चला आया।

यहाँ पहुँचकर "भारत नेपाल" एक पुस्तक लिखा और वह पुस्तक भारत की प्रधानमन्त्री श्रीमती इन्दिरा गांधी को समर्पण किया। उसके प्रकाशक श्री प्रेमनाथ शास्त्री, सन्मार्ग प्रकाशन, यू० बी० बंगलो रोड, जवाहर नगर, दिल्ली ने बड़े ही सुन्दर ढंग से सचित्र प्रकाशित किया। इतनी सुन्दर छपाई और सफाई बहुत कम देखने को मिलती है।

अब महाकवि महाराजाधिराज नेपाल-नरेश की कुछ कविताओं को भी आपके सामने रखना जरूरी है। लेकिन उनकी कविताओं पर ही आप मत रीझें, जीवन की परिस्थितियों के साथ भी उनका मिलान करें। वे कट्टर देशभक्त थे और जाति के राजपूत। राजपूतों का रक्त उनकी नस-नस में बराबर दौड़ता रहा। जीवन और काव्य में अन्योन्याश्रय सम्बन्ध है। जीवन-वन में कभी सुख-समीर का संचार होता है, कभी मिलन-मुकुल विकसित होता है, कभी विरह-बादल बरसता है, कभी नैराश्य निविड़ांधकार छाता है, कभी आशा-आलोक फैलता है, कभी हर्ष-हरशृङ्गार खिलता है, कभी शोक-शम्पा का नर्तन होता है और इन सबकी प्रतिक्रियाओं का प्रभाव काव्यरूपी दर्पण पर प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से अवश्य पड़ता है। काव्य जीवन की उपेक्षा कर जीवित *नहीं रह सकता। दूसरे शब्दों में उसे यों कहें कि 'जीवन काव्य का जीवन है।'*

महाकवि महाराजाधिराज नेपाल-नरेश श्री महेन्द्र विक्रमशाह की कविताओं के संकलन का नाम है 'उसे को लागि' (उसी के लिए)। ये कविताएँ स्वर-लय-ताल-छन्द से बद्ध हैं। इनकी संख्या ७५ है। इनमें गीति-काव्य के सर्वविशिष्ट गुण विद्यमान हैं। इनमें माधुर्य है, गेयता है और *सन्तुलनमयी शिवता है। इनमें मानवता-सम्बद्धता* है, सुस्थिरता है और है स्वानुभव की गहन तीव्रगामिता। इनमें वर्णन-शैलीगत मार्मिकता है।

इनमें तीन धाराएँ स्पष्ट परिलक्षित होती हैं। पहली धारा है प्रेम की जिनके दो रूप दृष्टिगोचर होते है— विप्रलम्भोन्मुख शृङ्गार और शृङ्गारोन्मुख *विप्रलंभ जिनमें* यत्र-तत्र रहस्यानुभूतियों की उर्मियाँ भी उद्वेलित होती हैं। दूसरी धारा है राष्ट्रीयता की। इसकी अभिव्यक्ति 'हे वीर ! हिंड अगिसरी! '(हे वीर, बढ़ो अग्रसर), 'आमा को पुकार'(माता की पुकार), 'शक्ति देऊ हरि' (शक्ति दे हरि), 'इच्छा' आदि कविताओं में पूर्णरूपेण हुई है। कवि नेपाल देश के नर-नारियों को हर्षोत्फुल्ल आनन देखने के आकांक्षी थे। *वे शोषण के उन्मूलन की भावना के पोषक थे। वे समाज में आर्थिक* वैषम्य पर रक्त के आँसू बहाते थे—

रोती कलपती माँ ने भर आह यूँ पुकारा,
क्योंकर हुई यह मेरी सन्तान अलग-अलग है।

कोई धनी बना है, बिल्कुल गरीब कोई,
क्योंकर इन्हें मैं देखूं, सन्तान अलग-अलग है।
नंगा निपट है कोई, पहने है कोई मखमल,
कैसे कहूँ यह मेरी सन्तान अलग-अलग है।
है स्वर्ण-पात्र इस घर, पत्तल उधर है खाली,
क्योंकर सुनूं कि मेरी सन्तान अलग-अलग है।
रहता महल में कोई, छप्पर लिये है कोई,
कैसे कहूँ यह मेरी सन्तान अलग-अलग है।

इस भावना के उद्गाता से नेपाल का नये सिरे से निर्माण भी अवश्य हुआ जो जन-जन के लिए सुखद और कल्याणकर भी रहा। वे ब्राह्मण और चाण्डाल तथा पशु-पक्षी में अभिन्नता के दर्शनकामी रहे। वे विश्व-बन्धुत्व के अभिलाषी थे। वे नारी-स्वातंत्र्य के पक्षपाती थे। वे वर्ग और जाति की जटिलता के भंजक थे। उनकी देश-भक्ति इन पंक्तियों में द्रष्टव्य है—

मर्यो ज्यूं दैत्यो जस्ले बिर्सयो देश की माटो,
बाँच्यो सधैं त्यो जस्ले सम्झयो देश को माटो।

(अर्थात् जिसने देश की मिट्टी भुला दी वह जीवित होकर भी मृत है, और जिसने देश की मिट्टी समझी है वह सदा जीवित है।)

यहाँ मुझे महाकवि श्री मैथिलीशरण गुप्त की पंक्तियाँ स्मृत होती हैं—

जिसको न निज गौरव तथा निज देश का अभिमान है,
वह नर नहीं, नर-पशु निरा है और मृतक-समान है।

कवि की सत्-कीर्तिकामना इन पंक्तियों में द्रष्टव्य है—

प्रीतिगरेर सबमा, छोड़ नाम-निशान।
पाप-पुण्य दुइ साथ छ जाने।
बाँकी प्राण पनि छोडेर जाने,
रहँ दो रहने छ के ही आखिर।
धोहूँ नाम-निशान।
प्राण हंस जब नभ बिच उड़ ला,
कामगर्न यो देहले छोड़ ला,
कोमल शरीर भन्दथ्यो जसले,
छिह छिह लँजा भल्ला,
सागर का बिच घड़ा फुटेमा,
पानी-पानी मिलि एक भए भैं,
अन्त्य कालमा कामरहित भैं,
सागरमा मिलि जाऊँ॥
छोड़ नाम-निशान।

जिसका हिन्दी रूपान्तर यों है—

जिस दिन प्राण चले जायेंगे,
कुछ न रहेगा शेष,
पाप-पुण्य को छोड़ सभी का
होगा जब अवसान,
जग में छोड़ूँ नाम-निशान।
प्राण हंस नभ बीच उड़ेगा,
छोड़ मनुज की देह,
मृदु तन देख कहेगी दुनिया
ले जाओ शमशान—
जग में छोड़ूँ नाम-निशान।
सिन्धु बीच यदि घट टूटेगा,
जल मिल होगा एक,
अन्तकाल में काम-रहित हो
मिलूँ सिन्धु में प्रान—
जग में छोड़ूँ नाम निशान।

तीसरी धारा है नैसर्गिक सुषमा की जिसमें नेपाल की हिमानी प्रकृति में उद्भूत
रों और वन-प्रसूनों के ही सजीव चित्र नहीं हैं, वरन् वनस्थली में विहार करते पशु-
यों और मानव-प्राणियों की हार्दिक उन्मुक्तता के भी तथा उनके तन और मन की
यता के भी।

इसमें सन्ध्या के रंग-बिरंगी पटोर हैं, रुपहली रात है, नदियों का कलकल
ाद है, हरी पहाड़ियाँ हैं, निर्झर की निर्मलता है, श्वेत हिम-मण्डित हिमालय की
रता है, आदि—

तिलर पंखी बादलु माथी, सुनौलो साँझमा,
बगें को खोला कल-कल गरी, जुनिलो रातमा।

र्थात् निगली-पंखी बादल है, नीचे सुनहली सन्ध्या में कलकल निनादी निर्झर चाँदनी
में प्रवाहित हो रहा है।)

यतार उती हरीयो डाँडा, निर्मल झरना,
रुपौलो रंग ठाकुरो उच्चा-थ्या राम्रो हिमालय।

र्थात् इधर-उधर उन्नत गिरि है, निर्मल निर्झर है, रुपहले रंग का ऊँचा शीर्ष वाला
सुन्दर हिमालय का)।

कम्लोमा माम्लो, पीठमा डोको बोकेका भरीना,
आँखामा काजल कोरेकी मात्र पवित्र जमाना।

र्थात् मस्तक पर पट्टा, पीठ पर टोकनी उठाये आ रही है। नर और नयनों में मात्र
जल पारे आ रही है पुनीता रमणी।)

'गोठाली मारो प्रति' शीर्षक कविता में चित्रात्मकता की सघनता है और स्वाभाविकता का पर्याप्त पुट भी। इसमें मर्मस्पर्शिता है और प्राकृतिक रहस्यवादिता भी।

'उसै को लागि' को विरह-काव्य की भी संज्ञा दी जा सकती है। वस्तुतः इसके कवि के विचारानुसार अश्रु और हास का संघर्ष ही जीवन है—

आंसु र हाँसो को संघर्ष जीवनोमा।
हिम्मत न हार विन्ति यो प्यार को सफरमा।

अर्थात्— (है अश्रु-हास का ही संघर्ष जिन्दगी में,
हिम्मत न हार जाना इस प्यार के सफर में।)

विरह-गीतों में कवि की भावना के आधार में कहीं-कहीं मूर्तता है और कहीं-कहीं अमूर्तता भी तथा रहस्यमयता भी। इसकी चरम परिणति—

घायल पंछी - सामें उड़ता,
झंझा - तूफानों से लड़ता,
यहाँ छटपटाता एकाकी—
कौन देश तुम गयीं और क्यों?
हृदय-नगर मेरा कर सूना,
छीन शान्ति देकर दुख दूना,
छोड़ मुझे विह्वल एकाकी—
कौन देश तुम गयीं और क्यों?
आँधी में क्यों छोड़ा दामन
डगमगा रहा है यह जीवन
चन्द्रहास था कल जिस उर में,
घिर-घिर छाये आज वहाँ घन—
कौन देश तुम गयीं और क्यों?
मोद-हास के सब मधु मेले
गये, बचे कुछ अश्रु कसैले,
सुखद इन्द्रधनुषी सतरंगी
बिसरी सुधि, हम रहे अकेले—
कौन देश तुम गयीं और क्यों?

नेपाली कविता में आजकल मालिनी, शिखरिणी, वसन्ततिलका आदि छन्द प्रचलित हैं किन्तु कवि श्री महेन्द्र ने प्रचलित छन्द-योजना को त्यागकर नया मार्ग अपनाया और कबीरदास की इन पंक्तियों को सार्थकता प्रदान की—

लीक छाँड़ि तीनों चलें,
सायर, सिंह, सपूत।

उन्होंने ऐसे अनेक शब्द प्रयुक्त किये जो नेपाली शब्दकोष में अनुपलब्ध हैं। ये शब्द व्यंजनापूर्ण हैं।

उनकी कविताओं में जहाँ माधुर्य का प्राचुर्य है वहाँ प्रसाद का प्रवाह भी। वे संश्लिष्ट शब्द-योजना के पक्षपाती थे। उनकी कविताओं में प्रगतिगामिता है और दिशा-दृष्टि भी। वे सब-कुछ कहकर भी पाठकों को सब-कुछ कल्पना करने के लिए छोड़ देते हैं। उनका यह गुण उन्हें कवि के सर्वोच्च आसन पर प्रतिष्ठित करता है क्योंकि सन्तों के विचारानुसार कविता का धर्म सब-कुछ देना ही नहीं है वरन् सब कल्पना करने के लिए छोड़ देना है।

यदि शासक कवि हो, गुणज्ञ हो, गुणग्राही हो, शास्त्रज्ञ हो, नीतिज्ञ हो, राजनीति-पटु हो, प्रज्ञावान् हो और विश्व-बन्धुत्व का अभिलाषी हो तो देश का कल्याण होता है। इस अर्थ में नेपाल के सर्वतोमुखी उन्नयन में हमारा अखंड आत्मविश्वास है। इस दृष्टि से नेपाल-नरेश विश्व के नरेशों या शासकों में सर्वाधिक सौभाग्यशाली थे और अनुपमेय भी।

युगपुरुष श्री जगजीवनराम जी

> जिससे है भारत की लाली, दिल्ली गौरवशाली,
> जिसके अभिनन्दन पर जनता मना रही दीवाली,
> जिसका स्वर उठकर विहार से भारत पर छाता है,
> तम को फोड़ रश्मि के जग में जो दौड़ा जाता है।

देश-गौरव श्री जगजीवनराम जी को मैं कब से जानता हूँ, स्मरण नहीं है। जीवन में वह शुभ मुहूर्त कभी-न-कभी अवश्य आया होगा जब मैंने उनके प्रथम दर्शन और परिचय प्राप्त किये होंगे। मेरा अपना विश्वास है, उस आनन्दमय अवसर पर भी मुझे ऐसा ही अनुभव हुआ होगा कि मैं उनसे न जाने कब से परिचित हूँ। उनके व्यक्तित्व में आत्मीयता का ऐसा गजब का आकर्षण है जिसका उदाहरण पाना दुष्कर है।

मझोला कद, श्याम वर्ण, सौम्य-दिव्य मुखमण्डल पर शालीनता की उभरी हुई आभा, आकर्षक तथा सरस व्यक्तित्व जो मिलने-जुलनेवालों पर सहज रूप में गहरा प्रभाव डालता है, सम्वेदनशील हृदय जो माता-पिता की विरासत में मिला है, किसी भी अन्याय-अत्याचार-पीड़ित के प्रति द्रवीभूत हो उठता है, न्याय-पंथियों के निमित्त कुसुम-सम सुकोमल और समाज तथा देश के विरोधियों के प्रति वज्र-तुल्य कठोर—यही हैं युग-निर्माता प्रतिरक्षा-मंत्री श्री जगजीवनराम जी। वे कर्त्तव्यनिष्ठ और लोकसेवी हैं। वे आदर और श्रद्धा के पात्र हैं।

बेगूसराय में 'बालिका विद्यालय' के उद्घाटन और कई विद्यालयों में पारितोषिक-वितरण के लिए जनता की इच्छा हुई कि युगपुरुष श्री जगजीवनराम जी को बुलाया जाय। यह भार मुझे सौंपा गया। युगपुरुष श्री जगजीवनराम जी पटना आने वाले थे। निश्चित तिथि को मैं पटना पहुँचा। श्री जगजीवनराम जी बिहार-निर्माता बाबू साहब (डॉक्टर अनुग्रहनारायणसिंह) के साथ ठहरे हुए थे। काली शेरवानी और चुस्त पाजामा पहने हुए थे वे और आरामकुर्सी पर बाहर बैठे हुए थे। उनके चारों ओर कुर्सियाँ रखी हुई थीं। मिलने-जुलनेवालों की भीड़ थी। लोग एक-एक कर बातें करते जाते थे लेकिन उनके पास से कोई हटता नहीं था। बाबू साहब बाहर से आये और उन्हें जलपान करने को ऊपर बुलाया। युगपुरुष जगजीवनराम जी ऊपर गये और जलपान करने लगे। मैंने अपना मन्तव्य व्यक्त किया। उनके

बोलने के पूर्व ही बाबू साहब ने कहा—'कविजी के प्रोग्राम दे दीहीं।' देश-गौरव जगजीवन बाबू ने कहा—'आठ फरवरी १९५३ ई० को सुबह में नौ बजे हम हवाई जहाज से बेगूसराय आ जाईब और साँझ तक सब काम करिके वापस चल जाईब।' मैं दो-तीन बजे तक उनके साथ रहा। चार बजे वे शाम में आरा-सासाराम चले गये और मैं शाम की गाड़ी से बेगूसराय आया। उनके बेगूसराय आगमन की तिथि सबको बतला दी। बेगूसराय में खुशी की लहर बहने लगी। सब लोग अपनी-अपनी संस्थाओं का इन्तजाम करने लगे।

श्री विष्णुदेव नारायणजी, एम० ए०, एल० एल-बी० ने ७ फरवरी, ५३ ई० को सन्ध्या सात बजे बेगूसराय बाजार बन्द करवा दिया। कदम-कदम पर बाजारवालों ने द्वार, माला, आरती, चन्दन, अक्षत आदि की व्यवस्था की और बाजार को सजा दिया। मेरा खयाल है, इसके पूर्व या पश्चात् बेगूसराय बाजार इतने सुन्दर ढंग से कभी सजाया नहीं गया था।

ऐसा स्वागत भी किसी का नहीं हुआ था। ८ फरवरी ५३ ई० को समय पर विष्णुदेव बाबू, रवीन्द्र और अरविन्द के साथ मैं भी हवाई जहाज के अड्डे पर पहुँच गया। समय पर जहाज आया। वे फूल-मालाओं से लद गये और उनके जय-जयकार से आसमान गूँजने लगा। मोटर गाड़ी चली। उनके साथ दो-तीन व्यक्ति बैठे—एक जिला-धीश श्री हरपति कंठ, दूसरे श्री कैलाश झा, एस० पी० और तीसरा मैं। विष्णुदेव बाबू आदि दूसरी गाडी से आगे चल दिये। एक बिगुल बजा। लोगों ने समझ लिया कि देश-गौरव श्री जगजीवनराम जी बाजार में पहुँच रहे हैं। खबर बिजली की भाँति बात-की-बात में फैल गयी। सब अपनी-अपनी दूकान के सामने फूल, माला, चन्दन-अक्षत, आरती आदि लेकर खड़े हो गये। नौरंगा से लोग उन्हें फूल-मालाएँ पहनाने लगे और आरती भी उतारने लगे। शहर में एक विचित्र उल्लास की हवा बहने लगी। 'जगजीवन बाबू की जय' से आकाश गूंजने लगा। विष्णुदेव बाबू ने व्यवस्था यह की थी कि किसी दूकान पर दो मिनट से अधिक समय न लगे। हर दूकानदार इस अल्पावधि में ही स्वागत-सम्मान कर पाता था और कृपण की तरह समय बचाता था। अन्तिम स्वागत किया श्रीकुंजबिहारी शर्मा ने चित्रकला स्टूडियो मे। माला-आरती आदि के बाद शर्माजी ने उनके विभिन्न पोजों के फोटो लिये। उनकी दूकान से सीधे दक्षिण की ओर कचहरी होते हुए सुहृद् नगर आ गये। कचहरी और सुहृद् नगर के बीच स्थल-स्थल पर लोगों ने उनका स्वागत किया। डेरे में विष्णुदेव बाबू, राष्ट्रकवि 'दिनकर', रवीन्द्र, अरविन्द आदि थे। मेरे फाटक पर मेरे पुरोहित ने उनकी अभ्यर्थना की। देश-गौरव श्री जगजीवनराम जी के साथ पटने से महंत श्री महादेवानन्द गिरि भी आये थे और मोटर मे साथ थे। डेरे मे उन्होंने हाथ-मुंह धोये। चाय चली। सुहृद् नगर डाकघर में टेलीफोन का उद्‌घाटन श्री जगजीवन बाबू ने किया। कुछ देर के बाद सब श्री विष्णुदेव बाबू के यहाँ भोजन करने को गये। विष्णु देव बाबू की व्यवस्था की प्रशंसा सब अतिथियों ने की। पचास व्यक्तियों के लिए चाँदी की पचास-पचास थालियाँ, कटोरे, ग्लास आदि। भोजन की सुस्वादुता की चर्चा जगजीवन बाबू और महंतजी

ने कई जगह की। जगजीवन बाबू ने कश्मीर मे भी अपने मित्रों से इसकी चर्चा की थी।

भोजन के उपरान्त श्री जगजीवन बाबू कई संस्थाओं मे गये। उन्होंने 'बालिका विद्यालय' का उद्‌घाटन किया और जे० के० हाई स्कूल में पारितोषिक वितरण किया। जन-सभा दूसरी जगह होने वाली थी लेकिन उसमें देर की वजह से जे० के० स्कूल मे ही जन-सभा भी आयोजित की गयी। भीड़ बादलो की तरह उमड़ पड़ी। मैदान विस्तृत था पर उसमें तिल रखने की जगह न थी। जिस समय देश-गौरव श्री जगजीवनराम भाषण करने को खड़े हुए, पांच मिनट तक उनका जयकार गूँजता रहा। जब सब शान्त हो गये तब उन्होंने कवित्वमय गद्य-काव्य मे एक घण्टे तक भाषण किया। सभा में इतनी शान्ति थी, प्रतीत होता था कि वहाँ केवल समय के और कोई आदमी न हो। उनका भाषण अद्‌भुत था। उतना सुचिन्तित और धाराप्रवाह गद्य-काव्यमय भाषण लिखित रूप मे भी नही हो सकता था, मानो स्वयं सरस्वती उनकी वाणी मे विराज रही हो। आवाज चारो ओर गूँजती थी और श्रोता स्तब्ध-चकित उस विचार-धारा मे खो गये थे जिसका प्रतिपादन वे नवीन ढग से कर रहे थे। इसके बाद वे दस मील दूर मंझौल स्कूल मे गये। रास्ते मे स्थल-स्थल पर स्वागत की तैयारी थी। मंझौल मे भी जनसमूह समुद्र की तरह उमड़ा था। वहाँ भी उन्होंने वैसा ही भाषण किया। दोनो भाषणों मे विचार, अभिव्यक्ति और ढग की एकरूपता का सर्वथा अभाव था। यह उनके मौलिक विचारक, प्रतिपादक और शैलीकार होने का ज्वलन्त प्रमाण था। सब आनन्दमय हो उठे। भाषण की छाप जन-मन पर अमिट रही।

मंझौल से वे विष्णुदेव बाबू के यहाँ गये और सबसे मिलने के बाद हवाई जहाज के अड्डे पर। श्री गोविन्द मस्करा के घर से दक्षिण नौरंगा पुल पर बहुत बड़ा फाटक बना हुआ था। उसमें दोनों तरफ़ 'शुभ विवाह' लिखा हुआ था। बहुत सुन्दर इकरंगा कपड़ा लड़को ने टाँगा था। जगजीवन बाबू की नजर कपड़े पर पड़ी। उन्होंने मुझसे मजाक करते हुए पूछा—'शुभ विवाह वाला परदा क्यों टाँगा गया?' राष्ट्रकवि 'दिनकर' ने उन्हें कहा—'आपके आने की खुशी मे जिसको जो मिला उसने वही टाँग दिया।' इस बात को सुनकर जगजीवन बाबू आनन्द-विभोर हो गये। जहाज समय पर आया। उन्हें विदा कर हम लोग बेगूसराय चले आये। रात मे डॉ० 'दिनकर' और मैंने श्री विष्णुदेव बाबू के यहाँ भोजन किया।

श्री जगजीवन बाबू को साहित्य और साहित्यकारों से बहुत प्रेम है। वे हिन्दी या अंग्रेज़ी में घण्टो धाराप्रवाह बोलते हैं। वे उद्‌भट वक्ता होने के साथ-साथ अध्ययन-शील विद्वान् हैं। उनका व्यक्ति-रूप गद्यात्मक है और व्यक्तिगत जीवन भी। लेकिन उनका भाषण, चाहे वह किसी भी विषय पर हो, गद्य-काव्यमय होता है। यदि उनके सब भाषण संगृहीत रूप मे प्रकाशित हों तो साहित्य को अमूल्य निधि मिलेगी। मैं दमे की वजह से बहुत कमज़ोर हो गया हूँ। यदि शक्ति होती तो मैं यह कार्य कर डालता। उनका भाषण श्रोताओं के चित्त मे एक अद्‌भुत तल्लीनता उत्पन्न करता है। वे विचारक हैं, दार्शनिक हैं और साहित्यिक भी। वे बराबर साहित्यिक समारोहो के

अध्यक्ष या स्वागताध्यक्ष बनाये जाते रहे है। २६ अप्रैल १९६० ई० को 'बिहार प्रांतीय साहित्य सम्मेलन' ने कुछ साहित्यकारों को सम्मानित किया था। उसके स्वागताध्यक्ष श्री जगजीवन बाबू थे। सम्मान-पत्र पर उनके हस्ताक्षर अंकित हैं। यह सम्मान-पत्र बिहार के इने-गिने साहित्यकारों को दिया गया था। बड़े-बड़े साहित्यिकों की पंक्ति में मुझे भी बैठने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था।

श्री जगजीवन बाबू मधुर विश्वकोष हैं जिसका प्रत्येक पृष्ठ नवीन है। वे कभी न बुझनेवाले आशावाद और कभी विफल न होनेवाले बल के स्रोत हैं। उनकी सच्चरित्रता, सरलता, सौम्यता और सज्जनता का प्रभाव उनके विरोधियों पर भी पड़ता है। उनके सरल-सौम्य व्यवहार को उनका साथी या अनुयायी जीवन-पर्यन्त याद रखेगा। इनकी अनेक अनुभूतियों से मैं आमरण आह्लादित होता रहूँगा। १० सितम्बर १९७० को एक सार्वजनिक संस्था के उत्सव में अध्यक्ष होकर मैं गोरखपुर गया था। वहाँ मैं अकस्मात् दमे का शिकार हो गया। सौभाग्य से श्री अरविन्दकुमार 'अरविन्द', उनका छोटा लड़का राजीवकुमार और उनकी धर्मपत्नी भी गाड़ी में थे। रात-भर दम फूला। सुबह में हम लोग बरौनी पहुँचे। अरविन्द ने मुझे डेरे पहुँचा दिया। इसके बाद विष्णुदेव बाबू डॉक्टर आदि लेकर आये। विगत वर्ष दमे ने मुझे बहुत तंग किया। जगजीवन बाबू को यह मालूम हुआ। वे पत्र द्वारा या जैसे भी हो बराबर हाल-चाल पूछते रहते थे और सान्त्वना देते रहते थे। मुझ-जैसे छोटे आदमी उनके हज़ारों परिचित हैं। इस स्थिति मे मेरे प्रति उनकी चिन्ता उनकी महत्ता का ही प्रमाण है।

उनका सम्पूर्ण जीवन कर्मठ और त्यागमय रहा है। उनकी महत्ता के कारण है उनकी व्यवहार-कुशलता और मृदुता। उनमे संगठन की ऐसी शक्ति है जो आधुनिक युग में बहुत कम नेताओं मे है। उनके नाम पर हज़ारो की भीड़ बात-की-बात में जमा हो जाती है।

उनका अन्तरंग हिमालय-जैसा अडिग और गंगा की तरह निर्मल है। इस अन्तरंग मे भारतीय संस्कृति की भावनाओं का समुद्र है जिसमे विविधवर्णी तरंगें उठती हैं। प्रतिरक्षा-मंत्री की हैसियत से उन्होंने देश में और देश के बाहर देश की कीर्ति-पताका फहरायी है। जब पाकिस्तान ने भारत पर आक्रमण किया तब उन्होंने कहा था कि 'हमारा देश युद्ध नहीं चाहता, लेकिन अपनी रक्षा ज़रूर करेगा। पाकिस्तान ने यदि अपनी हरकतें बन्द न की तो भारत की ज़मीन पर लड़ाई नहीं होगी—लड़ाई होगी पाकिस्तान की ज़मीन पर। भारत जो ज़मीन लेगा उसे लौटायेगा नहीं।' महाभारत की लड़ाई अट्ठारह दिनों तक चली थी। पाकिस्तान से हमारी लड़ाई (१९७१ ई०) चौदह दिनों तक चली जिसके फलस्वरूप बांगला देश का अभ्युदय हुआ और विश्व के देशों से उसे मान्यता प्राप्त हुई तथा बंगबन्धु शेख मुजीबुर्रहमान रिहा हुए।

स्वार्थ-बुद्धि या अहंकार से किया कार्य दुःख या बन्धन का कारण होता है। ... आने पर जगजीवन बाबू अपना कर्तव्य-पालन निष्काम भाव से किये जा ... हित के लिए। देश के हित के लिए जो कुछ उचित होता है वे करते हैं।

वे ऊपर से बहुत सरस और भीतर से बहुत कड़े हैं। उनकी प्रकृति में स्नेहिलता और विनोदप्रियता है जिसकी झांकी उनके भाषणों में भी मिलती है। विषय कितना भी गंभीर हो, वे उसे सीधी-सादी भाषा में, कवित्वमयी शैली में, व्यंग्य-चुटकियों में दिलचस्प रूप देते हैं। वे जिस व्यक्ति या संस्था के साथ रहते हैं, उसका साथ सच्चे मन से निभाते हैं।

युगपुरुष जगजीवनराम जी का जन्म उस जिले में हुआ जिसको देश के बड़े-बड़े शूरवीर, नेता और असाधारण विद्वान् पैदा करने का गौरव प्राप्त है। जिस जिले की वीरप्रसविनी भूमि ने शेरशाह और बाबू कुँवरसिंह जैसे शूरवीर पैदा किये, विश्वामित्र और रोहतास जैसे सपूत पैदा किये, संन्यासी भवानीदयाल और अमरसिंह जैसे नेता पैदा किये और डॉ० सच्चिदानन्द सिंह जैसे धुरंधर विद्वान् पैदा किये, उसी शाहाबाद जिले के चाँदवा नामक ग्राम ने प्रतिरक्षा-मंत्री श्री जगजीवनराम को ५ एप्रिल १९०८ ई० को पैदा करने का सौभाग्य प्राप्त किया। इसी चाँदवा नामक ग्राम के पास १८५७ ई० में बाबू कुँवरसिंह और अमरसिंह ने अंग्रेजों के छक्के छुड़ाये थे। अद्भुत है महिमामय जिला और चाँदवा ग्राम जहाँ अनेक शूरवीरों और विद्वानों ने अपनी छाप छोड़ी है। वहाँ का इतिहास स्वर्णाक्षरों में अंकित है और जो कुछ है देश-गौरव प्रतिरक्षा-मंत्री के जीवन में अभ्यक्त नहीं है। १९७१ ई० में हमारे देश की जो अभूतपूर्व विजय हुई है इस विजय ने देश की कीर्ति में चार चाँद लगाये हैं। इसका सम्पूर्ण श्रेय प्रधान मंत्री इन्दिरा गांधी और प्रतिरक्षा-मंत्री श्री जगजीवनराम जी को प्राप्त है।

जो बात ईसा, मुहम्मद, बुद्ध आदि ने कही, वही बात गांधी जी ने भी कही, लेकिन सबके कहने के अपने-अपने ढंग हैं। इसी तरह श्री जगजीवन बाबू ने ऐसा कुछ नहीं कहा जो पहले न कहा गया हो, लेकिन उनका ढंग अपना है। उन्होंने देश की भलाई के लिए वह सब किया है और कहा है जो किसी युग में न किया गया है और न कहा गया है।

श्री जगजीवन बाबू जितने विनम्र और दृढ़ हैं, उतने ही महान् हैं। उनकी विनम्रता, दृढ़ता जितनी स्वाभाविक है, उनकी महानता भी उतनी ही स्वाभाविक है। वे भारतीय संस्कृति के उज्ज्वल प्रतीक हैं। उनमें ऐसी अनेक विशेषताएँ हैं जिनकी सराहना सारा देश करता है। उनकी जबर्दस्त खूबी यह है कि जिस विभाग में या संस्था में वे रहे हैं उसे अपनी कर्मठता और बौद्धिक चातुर्य से चमकाते रहे हैं। जब भारत आजाद हुआ तब केन्द्रीय मंत्रिमण्डल में पण्डित नेहरू ने उन्हें भी रखा और उन्हें श्रम-विभाग सौंपा। उस समय केन्द्रीय मंत्रिमण्डल में सबसे कम अवस्था उनकी ही थी। उन्होंने सर्वप्रथम धनबाद में दौरे का कार्यक्रम बनाया और अपने कार्यक्रम के साथ भारतरत्न डॉ० राजेन्द्रप्रसाद का भी कार्यक्रम बनाया। निश्चित तिथि को दोनों धनबाद पहुँच गये। दोनों का जो स्वागत-सम्मान हुआ वह देखते लायक था। बहुत उत्साहपूर्ण जोशीला भाषण था। श्रोतागण आनन्द से पुलकित हो उठे। उस भाषण से पण्डित नेहरू अतीव प्रसन्न हुए थे। उनका कार्यक्रम कलकत्ते का बना। उन्होंने श्री

जगजीवन बाबू को भी कलकत्ते का कार्यक्रम बनाने को कहा। श्री जगजीवन बाबू को इससे बड़ी खुशी हुई क्योंकि अधिकतर मजदूर पश्चिम के थे और जब वे कोई सभा करते थे तब जगजीवन बाबू कॉलेज से छुट्टी लेकर उसमें शामिल होते थे और भाषण करते थे। निश्चित तिथि को नेहरू और जगजीवन बाबू कलकत्ता गये। पण्डित जी को देखने के लिए मजदूरों की अपार भीड़ सभा-स्थल पर पहुँची। जगजीवन बाबू मंच पर खड़े हुए और अपने गरीब साथियों को शान्तिपूर्वक रहने को कहा। उन्हें देखते ही और उनके दो-चार शब्द सुनने के बाद सभा-मण्डल की जनता शान्त हो गयी। जगजीवन बाबू कुछ देर बोले। उसके बाद नेहरू जी घण्टों बोलते रहे। जनता शान्तिपूर्वक सुनती रही। नेहरू जी जगजीवन बाबू के प्रभाव और भाषण से बहुत प्रसन्न हुए। लौहपुरुष वल्लभ भाई पटेल भी उन्हें बहुत मानते थे। भारत के नवयुवकों में इस बात के लिए प्रसन्नता की लहर दौड़ती थी कि हम लोगों के बीच के व्यक्ति भारत के शासन की बागडोर बड़े ठाट-बाट से सँभाल रहे हैं और सभी बड़े-छोटे के प्रिय पात्र बने हुए हैं। इंगलैण्ड तथा रूस में श्री जगजीवन बाबू ने जो भाषण किया, उसकी तारीफ विदेशियों ने भी खूब की। इंगलैण्ड के श्रम मंत्री श्री बेविन ने उनके भाषण और व्यवहार की भूरि-भूरि प्रशंसा रपट में की थी। श्रम-मंत्री होने के नाते श्री जगजीवन बाबू जेनेवा में हुए अन्तर्राष्ट्रीय श्रम-सम्मेलन में गये थे। उस समय श्री बेविन के साथ उनका एक फोटो छपा था। श्रम-मंत्री की हैसियत से डॉ० अनुग्रहनारायण भी सम्मेलन में गये थे। इंगलैण्ड के 'किंग्सले हॉल' में उन लोगों का फ़ोटो भी वहाँ-वालों ने खींचा था। दोनों फोटो बाबू साहब (डॉ० अनुग्रहनारायणसिंह) ने मुझे दिये थे जिनका उपयोग मैंने 'जग-जीवन' नामक खण्ड-काव्य में किया था। जिस समय लोगों ने उनका अभिनन्दन पटने में किया था, यह प्रकाशित हुई थी।

युगपुरुष की परिभाषा को जगजीवन बाबू ने चरितार्थ कर दिया है। उन्होंने अपने व्यक्तित्व का निर्माण स्वयं किया है। हिन्दू समाज के उपेक्षित अंग में उत्पन्न होकर भी उन्होंने अपनी प्रतिभा से सम्पूर्ण राष्ट्र को चमत्कृत किया है। वे अपनी प्रतिभा और सेवा-भावना से राष्ट्र के विशिष्ट पद को सुशोभित कर चुके हैं। 'होनहार बिरवान के होत चीकने पात' इस उक्ति में यदि तथ्य है तो इसका उदाहरण उनका जीवन है। उनकी प्रतिभाओं से पराभूत और चमत्कृत होकर मैंने 'जगजीवन' नामक खण्ड-काव्य और 'जगजीवन' नामक गद्य-पुस्तक की रचना की थी और पटना में अभिनन्दन-समारोह के शुभ अवसर पर अभिनन्दन-समिति ने उन्हें यह पुस्तक समर्पित की थी।

उनमें एक और गुण है जो बहुत कम लोगों में दृष्ट होता है। वे गरीबों, रोगियों और दु:खियों की सेवा करना अपना धर्म मानते हैं। दूसरी बात यह है कि वे दूसरों पर अपना विचार लादना पसन्द नहीं करते। इसके विपरीत वे किसी का अनुचर होना भी पसन्द नहीं करते। वे सबकी बातें सुनते हैं लेकिन करते हैं अपने मन की, लेकिन इस ढंग से करते हैं कि वह सबको मान्य हो।

उन्होंने सिद्ध किया कि राजनीति सिद्धान्त की अपेक्षा व्यवहारशील अधिक है। यही कारण था, उन्होंने कहा था—"अगर लड़ाई हुई तो हमारी जमीन में नहीं, बल्कि

उनकी जमीन में।" यह विश्वास उन्होंने बार-बार व्यक्त किया था। वे जनता के साथ चलनेवाले नेता हैं। जब पचपन करोड़ भारतीयों की आंखें सीमा पर लगी थीं, हमारे नेता की वाणी में गांभीर्य ही नहीं था, दृढ़ता भी थी। मौन जहाँ भाय और हल्के पाँव लौट जाय तथा राष्ट्र यह समझे कि गोलियों, बमों, टैंकों और जेटों की गड़गड़ाहट के बाद भी वह सुरक्षित है, तो यह स्वर किसी अबोध का स्वर नहीं हो सकता। उन्होंने जो कार्य किया वह अद्भुत है, अभूतपूर्व है और अविस्मरणीय है। सम्पूर्ण देश इसके लिए उनका ऋणी है और रहेगा। पाकिस्तान ने भारत पर दुहरा आक्रमण किया था। पहले उसने बांगला देश के निवासियों को शरणार्थियों के रूप में हमारे देश में धकेला और पुन हमारे देश पर चढ़ाई की। श्री जगजीवन बाबू ने ईंट का जवाब पत्थर से दिया। देश के मुख की लाली रह गयी। आज देश में जो हरियाली है उसके पीछे श्री जगजीवनराम के श्रम का सिंचन है।

उनका जीवन देश का जीवन है, राष्ट्र की थाती है, समाज की धरोहर है और आनेवाली पीढ़ियों के लिए प्रकाशस्तंभ है।

पाकिस्तान पर भारत-विजय के अवसर पर मैंने उन्हें पत्र लिखा था—

आदरणीय बन्धु,

प्रणाम।

इतिहास परस नूतन विधान,
पन्ने समेट ले पुराचीन
तुमने कलम उठायी है,
लिखने को कुछ गाथा नवीन।

आपने अपनी कर्मठता, व्यवहार-कुशलता, राजनीतिज्ञता और विद्वत्ता से भारत के इतिहास की सरिता को मोड़ा है। भारत की जनता को एक नयी रोशनी दी है। बधाई !

बधाई-पत्र के उत्तर में उनका यह पत्र आया—

रक्षा-मंत्री, भारत
३१ जनवरी, ७२

प्रिय भाई,

भारतीय सेनाओं द्वारा बंगला देश की मुक्ति एवं पाकिस्तान पर हुई विजय के सम्बन्ध में आप द्वारा भेजी गयी विजय-बधाई प्राप्त हुई। मैं इसके लिए एवं अपने व तीनों सेनाओं के प्रति व्यक्त की गयी भावनाओं के लिए आपका धन्यवाद करता हूँ।

आपका,
जगजीवनराम

यह पत्र उनकी कार्यदक्षता, तत्परता और व्यवहार-कुशलता का प्रतीक है। "बंगला देश की स्वाधीनता के लिए जो संग्राम आरम्भ हुआ वह केवल चौदह दिनों में

महाकवि महामहिम श्री देवकान्त बरुआ

मँझोला कद, भरा-गठा बदन, दिव्य वर्ण, सौम्य मुख-मण्डल पर शालीनता की उभरी आभा, अधरों पर हास्य की रेखा, आकर्षक व्यक्तित्व जो सहज ही मिलने-जुलनेवालों पर प्रभाव डालने में समर्थ है और संवेदनशील हृदय जो किसी भी अन्याय-अत्याचार-पीड़ित के प्रति द्रवीभूत हो उठता है। ये हैं महाकवि महामहिम श्री देवकान्त बरुआ। उनका वैशिष्ट्य किसी से परिचय देने-दिलाने की अपेक्षा नहीं रखता। उनका रहन-सहन, बोल-चाल, संस्कारमय मुखमण्डल आदि उनके अनुरूप हैं।

उनका लुभावना व्यक्तित्व मनुष्यता के निखरे हुए स्वाभाविक सौन्दर्य का परिचायक है और हमारे साहित्य-मन्दिर का जगमगाता गौरव-प्रदीप है। उनकी हास्य-मयी मुद्रा दर्शकों को अनायास आकृष्ट करती है। प्रसन्न मुद्रा उनकी सहचरी है जिससे उनके अगल-बगल के लोग लाभान्वित होते हैं। उनकी संस्कारशीलता से वातावरण शान्त-प्रसन्न रहता है।

सेवा से सत्ता प्राप्त होती है और सत्ता से सेवा का अवसर। इस आधार पर ईसा, बुद्ध, मुहम्मद और गांधी ने सेवा और सत्ता में समन्वय स्थापित करने का प्रयत्न किया था। सत्ता राजनीति है और सेवा रचनात्मक कार्यक्रम। इस चिन्तन में जो शक्ति अन्तर्हित थी उससे भारत को नयी जिन्दगी मिली और वह अन्ततः आजाद हुआ। आजादी के बाद सत्ता की भूख बढ़ी और सेवा का स्थान अवसरवादिता ने लिया। देश के बड़े-बड़े त्यागी महापुरुषों को देखा, जब सत्ता में आये तब छोटी-छोटी बात के लिए आपस में मतभेद करने लगे। यह बात श्री बरुआ में नहीं पायी जाती। वे जहाँ रहते हैं, लोगों को बात-की-बात में हँसाते हैं और स्वयं हँसते हैं। यह पता नहीं चलता कि उनके पास भी अधिकार है और सत्ता है। गांधीजी ने कहा था कि अब कांग्रेस तोड़ दी जाय क्योंकि इसके द्वारा ही सत्ता प्राप्त हुई थी, लेकिन लोगों ने उनकी राय से कार्य नहीं किया।

श्री बरुआ को किसी व्यक्ति के दोषों की ओर से उदासीन रहकर उसके स्मरणीय गुणों को देखने-परखने में आनन्द मिलता है। जिसने उन्हें नहीं देखा है वह भी पहली बार में समझ जायेगा कि वे कवि हैं। उनका रहन-सहन, बोल-चाल और चाल-ढाल में उनका कवि-व्यक्तित्व व्यजित होता है।

आज़ादी की लड़ाई लड़ते-लड़ते जेल के शिकंजे में बन्द कर दिये गये और जो इससे वंचित रहे, अपनी कविता के द्वारा भारत के गाँवों में बिगुल फूँकते रहे तथा जनता को जगाते रहे। महाकवि बरुआ इससे वंचित नहीं रहे। वे जिस साधना-ज्योति से हमारे साहित्याकाश को अलंकृत कर रहे हैं वह चिरन्तनता के प्रांगण में सदैव मुस्कराती रहेगी। राजनीति और साहित्य, दोनों क्षेत्रों में उनका . .न प्रवेश है। साहित्य ने उन्हें यदि दुःख को भुलानेवाली मस्ती दी है तो राजनीति ने उन्हें आफ़तों और कठिनाइयों से जूझनेवाला धैर्य प्रदान किया है। साहित्य ने यदि उन्हें कल्पनाशील और भावुक बनाया है तो राजनीति ने उन्हें व्यवहार-कुशल और नीतिज्ञ बनाया है। उनके व्यक्तित्व-निर्माण में दोनों का पारस्परिक योग रहा है। इतना होते हुए भी उनका व्यक्तित्व निःसंग है और व्यक्तित्व-ओज सहजात है।

सब-कुछ होते भी साहित्य स्वभाव से राजनीति से श्रेष्ठ है। यदि साहित्य का अमृत नहीं बरसे तो राजनीति को अमरता नहीं मिल सकती। राम ने अपने लिए जो अयोध्या बसायी थी वह उजड़ गयी, लेकिन राम के लिए अपने हृदय में जो कुटी वाल्मीकि और तुलसी ने तैयार की थी वह अमर है। अब राम अयोध्या की अट्टालिका में नहीं, वाल्मीकि और तुलसी की काव्य-कुटी में निवास करते हैं। साहित्य से राजनीति का निर्माण और उसका पालन-पोषण भी होता है। जिस राजनीति को समर्थन प्राप्त नहीं है वह ज़्यादा दिनों तक टिक नहीं सकती। राजनीति क्षणस्थायी वस्तु है और उसके आकाश में चमकनेवाली बिजलियाँ पलक मारते इस तरह बुझ जाती हैं कि फिर उनका नामोनिशान तक नहीं रहता। लेकिन साहित्य के छोटे पौधे भी सदियों पार तक अपनी सुगन्ध फैलाते रहते हैं। महाकवि की एक भी पंक्ति जब तक इस असार संसार में रहेगी, वे जीवित रहेंगे। साहित्यकार बरुआ साहब राजनीतिज्ञ से बहुत ऊँचे हैं। १७ नवम्बर, १९७१ ई० को 'बिहार राष्ट्रभाषा-परिषद्' के सत्रहवें अधिवेशन के वार्षिकोत्सव का उद्घाटन करते समय उन्होंने कहा था—

"अब हिन्दी राष्ट्रभाषा बन गयी है और अब इसे आम जनता से भी अपना सम्बन्ध कायम रखना है, इसलिये इसे व्याकरण और पद-विधान के बन्धन से इतना न बाँधा जाय कि हिन्दी केवल विद्वानों की गोष्ठी-भाषा बन जाय और इसका सम्पर्क लोक-जिह्वा से छूट जाय।"

देश और समाज के हित के लिए इससे अच्छी बात और अवसर के अनुकूल क्या हो सकती थी?

उनका प्रत्येक व्यवहार उनके निःस्वार्थ एवं निःस्पृह प्रेम का द्योतक है। वे औरों से कुछ लेना नहीं चाहते वरन् अपनी ओर से बराबर कुछ देते रहना चाहते हैं। सच्चे प्रेम की यह ज्योति जीवन-व्यापार की प्रत्येक दिशा में सदैव छिटकी रहती है। उनमें परिवार-प्रेम या मित्र-प्रेम ही नहीं है, अपने देश, समाज, साहित्य, संस्कृति और धर्म के प्रति भी अगाध अनुराग भरा हुआ है। वे अपनी प्राचीन सभ्यता के भक्त हैं। उनकी यह भक्ति उनके रहन-सहन और स्वभाव की सादगी के रूप में हमारे सामने आती है, किन्तु यह सादगी सुरुचि और स्वाभाविकता का दामन नहीं छोड़ती। वे पुराने होकर भी

नये हैं ग्रौर नये होकर भी बिल्कुल पुराने हैं। इसी प्रकार वे कवि होकर भी पक्के राजनीतिज्ञ ग्रौर राजनीतिज्ञ होकर भी सच्चे कवि हैं। उनकी काव्य-कला ग्रौर राजनीति-कला स्नेहमयी सौतों की तरह एक ही घर में रहती हैं ग्रौर ग्रापस में कभी लड़ती-झगड़ती नहीं। काव्य-कला उन्हें व्यवहार-ज्ञान से अलग नहीं हटाती ग्रौर न राजनीति ही उनकी सहृदयता को निर्जीव बनाने की चेष्टा करती है।

उनकी कविता का शब्द-शब्द बोलता है कि वह वहाँ से बोल रहा है ग्रौर क्या बोल रहा है। सुननेवाला सुनता है, पढ़नेवाला पढ़ता है ग्रौर देखनेवाला बनकर, बिना देखे भी कवि के कोमल भावों ग्रौर भावनाग्रों को देख लेता है कि हाँ, यह सत्य है, सुन्दर है ग्रौर शिव भी। वे जहाँ साहित्यकार हैं वहाँ प्रेम की प्रेरणा से साहित्य-निर्माण करते हैं ग्रौर त्याग की भावना से देश ग्रौर समाज का कल्याण।

जो सचाई, जो सुन्दरता, जो शिवत्व उनके जीवन में है वही उनके जीवन के प्रतिबिम्ब—उनकी रचनाग्रों—में भी है। जो मन में है वही वाणी में ग्रौर ग्राचरण में। न वे स्वयं बनते हैं न ग्रपने-ग्रापको व्यक्त करनेवाले माध्यम को बनने देते हैं। न उनके व्यक्तित्व में ग्राडम्बर है, न उनके कृतित्व में।

जीवन चलायमान है। ग्रनेक तरह की परिस्थितियों में ग्रनेक तरह की घटनाएँ चलचित्र की तरह ग्रनेक रूपों में ग्राती हैं। जो ग्रवसर जिस घटना से घिरा रहता है उसी ग्रवसर को—उसी घटना को ग्रपनी स्वाभाविक ग्रनुभूति का रूप देकर ग्रभिव्यक्त कर देना उनकी काव्यकला का कर्त्तव्य होता है। उनको देखकर ग्रौर पढ़कर ऐसा प्रतीत होता है मानो प्रकृति देवी उनको चारों तरफ से संगिनी की तरह घेरे रहती है जिसकी एक-एक बात उनके ग्रस्तित्व के ग्रणु-परमाणु में घर किये बैठी है। वह उनकी कल्पनाग्रों का सिंगार करती है ग्रौर उनकी भावनाग्रों को रंगीन बनाती है। उनकी भाषा में सहज कोमलता या मृदुलता की छाप रहती है। इस बात की पुष्टि के लिए उनकी 'सागर देखिसा' नामक पुस्तक से एक कविता मूलरूप में उद्धृत है :

सुन्दर

कार परस्तत धरनीर धूलि—उछवत्त उठि से
हुलर बुकुत देहि फूलर बातरि ?
मनर बनतो मोर हांहि उठे फूल ग्रावेगा ग्रा
प्रतिकूल रड़ कार ते जेर मुर ? कार सुर
ग्राकाशे ग्राकाशे बाजे तरार ग्रानत
बताहे बताहे भाहे सुरभि बानत
कानेन फूलाय फूल ? कौन देवतार परि
बाटर कांइटे बिन्धा चरन-रुधिर
पयर धुलित क्पे कामनार भापा ?
नाचि उठे हिया दूबरिर ?

माटिर महिमा-दीप्त आनन्द बिजुली लहर
सबारे-स्नेह राना बन्धुर मरम-वाणी सुन्दर सुन्दर
कोने मो कंपायमान ? कारना यौवन
नीरवे बिनाइ मरे बननिर पाने-पाने
लागी कौन अमृतर निभृत स्पन्दन
मोह कवि आंकी सेइ अतिनाकि सुन्दर
छंदामया छवि भाषार तुलिरे
सृष्टि करी अमृतर अपूर्व मूरति
छन्दर रङ्ग सानि धरार धूलिरे ।

अर्थात्—किसके स्पर्श से धरती की धूलि उत्सव में खिल्ला उठती ?
प्रशान्त हृदय मे फूलों का देह-संचार ?
मेरे मन-रूपी वन में हंस उठते फूल आवेग आकुल प्रत्येक फूल
रक्तिम है किसके रुधिरमय हृदय से ? किसका स्वर ?
आकाश-आकाश में घोलता ताराओं के प्राण में
हवा-हवा में चलते सुरभि-बाण
कौन फूल फूलता ? किस देवता की परो
पथ के कांटे से बिंधा चरण रुधिरमय
पथ की धूलि में कांपती कामना की भाषा ?
नाच उठता दूब का हृदय
पृथिवी के फूल, लता
चिड़ियों का कल-कूजन
मिट्टी की गरिमा-पूर्ण आनन्द की विद्युत्-लहर
सभी के स्नेह-सिक्त बन्धु की मर्मवाणी सुन्दर-सुन्दर
किसका मन नहीं कांपता ? किसका नहीं यौवन
एकान्त में ही झर जाते वन के पत्ते-पत्ते
लगकर किस अमृत का निभृत स्पन्दन
मैं कवि
आंकता उसी अपरिचित सुन्दर का गुप्त-प्रकट चित्र
भाषा की तूलिका से
सृष्टि करता अमृत की अपूर्व मूर्त्ति
छन्दों के रंग घोल
पृथिवी की धूल में ।

उनमें प्रतिभा और परिश्रम की समन्वित शक्ति का अधिवास है। कल्पना-वैभव के साथ-साथ उसको परिचालित करते रहने की क्षमता इतनी अधिक है कि क्लान्ति और विश्राम उनके लिए तब तक कोई महत्त्व नहीं रखते जब तक वे स्वयं आपको कर्म-विरत न करना चाहें जिसका प्रमाण है उनकी लिखी कविताओं की

पुस्तकों का पहाड़। वे जिस बात को सचाई से अनुभव करते हैं वही कहते हैं और उसी के अनुसार कार्य करने की चेष्टा करते हैं। यही कारण है, उनका कहना असरदार होता है और उनकी रचनाओं से लोग प्रभावित होते हैं। उनकी रचनाओं में अन्तस्तल को आकृष्ट करने की और उसे उत्फुल्ल बना देने की जो क्षमता है, उसके सजीव रूप का यदि आपको दर्शन करना हो तो उनसे समय माँगकर कुछ देर उनके पास बैठ जायें। उनकी कविताओं में वह शक्ति है जो हमारे अन्तस्तल की समस्त मांगलिक आकांक्षाओं को उद्वेलित कर हमें इस योग्य बनाती है कि हम गम्भीरतापूर्वक अपनी समस्याओं पर विचार कर सकें। करुणा और स्नेह के रस से निरन्तर सींची जानेवाली उनकी भाव-भूमि पर फैली अनुभूति-लता की हरियाली कभी मुरझाती नहीं और उसमें लगे काव्य-कुसुमों की सुरभि-मादकता हमारे साहित्यिक वातावरण में एक प्रकार की अद्भुत मोहिनी माया का प्रसार करती है।

अपने व्यक्तित्व के प्रति औरों के हृदय में आस्था और विश्वास जगाये रखने की जो क्षमता उनको प्राप्त है वह उनकी काव्य-कला से भी बढ़कर सौन्दर्यशालिनी प्रतीत होती है। वे प्रकृति देवी के अनन्य उपासक हैं। उनकी साहित्यिक प्रवृत्ति को परिपोषित करनेवाला पौष्टिक भोजन प्राकृतिक वैभव ही है। पहाड़ों पर विचरनेवाले स्निग्ध-कोमल मेघ मानो स्वयं कुछ न खाकर उनकी आत्मा को परितृप्त किया करते हैं ; वसुन्धरा की हरियाली को अपनी पंख-प्रभा से प्रमुदित करनेवाली मयूर-बालाएँ जैसे स्वयं नहीं नाचती, उनके अन्तस्तल के भीतर किलकनेवाले आनन्द को नचाती हैं; मुक्तधारा का कलकल संगीत मालूम होता है जैसे उनके अन्तर्नाद का विज्ञापन कर रहा हो ; शरत् की निखरी हुई चाँदनी उनकी उल्लास-ज्योत्स्ना को मानो झूम-झूमकर बिखेरा करती है और उनका प्रभावक्ता ही तत्पर-हृदया प्रकृति की प्रत्येक मुस्कान पर लोट-पोट हो जाता है और उसकी एक-एक अदा पर झूमने लगता है। प्रकृति के महोत्सव में लीन रहनेवाला उनका हृदय काव्यानुभूति से भरा हुआ है। मानव-हृदय और प्रकृति के बीच मधुर सामंजस्य सस्थापित करनेवाली गंभीर अनुभूति के नाते वे बहुत ही बड़े कवि हैं।

कर्त्तव्य-पालन करने या कराने में वे बहुत कठोर बन जाते हैं। उस समय उनका हृदय उनकी सारी कोमलताओं को ताक पर रखकर कार्य करता है। यह कठोरता शासन और कर्तव्य-पालन तक ही सीमित है, अन्यथा वे बहुत ही स्नेही और विनोदी स्वभाव के व्यक्ति हैं। उनके भाषणों में उनका विनोद छलका पड़ता है। यही कारण है, विषय कितना भी गंभीर हो वे उसे सीधी-सादी सरल भाषा और व्यंग्य-भरे चुट-कुलों से दिलचस्प बना देते हैं।

वे जिस संस्था में काम करते हैं उसका साथ सच्चे मन से निभाते हैं। उनके अधरों पर मन्द-मधुर मुस्कान की रेखा गुलाब-कली की तरह कभी-कभी खिल जाती है जो देखने लायक होती है। वे सबसे पहले मानव हैं और इसके बाद और कुछ। वे स्वयं गुणवान् हैं और गुणियों को पहचानकर गुणों का आदर करते हैं। उनकी वाणी में जितनी मिठास है, उनके हृदय में उतनी ही पर-दुःख-कातरता है।

उनमें अपनी महानता का, अपने मंत्री या विधान-सभा के अध्यक्ष या सभा के सदस्य होने का या महामानव होने का कोई मान नहीं है। राज्यपाल विद्वान् तथा कवि होने या समाज में अपने अत्यन्त उच्च स्थान का दंभ उनसे दूर है, विनम्रता उनकी नस-नस मे व्याप्त है।

वे बाल्यकाल से विचक्षण बुद्धि के व्यक्ति है। उनका जन्म असम की राज के एक ऊँचे कुल में हुआ था। उनके पिता कट्टर धार्मिक विचारों मे विश्वास कर सरल स्वभाव के सीधे-सादे महापुरुष थे। विद्यार्थी-जीवन के बाद उन्होंने आर जीवन की अपेक्षा देश-सेवा के कठिन मार्ग को ही अपना जीवन-मार्ग चुना था। कारण था, छात्र-जीवन की समाप्ति के बाद वे आज़ादी की लड़ाई में कूदे और तक देश आज़ाद नही हुआ वे तत्कालीन सरकार के खिलाफ़ आन्दोलन करते रहे आज़ाद होने के बाद वे असम विधान-सभा के अध्यक्ष हुए। वे वहाँ के मन्त्रिम के एक प्रमुख सदस्य भी बहुत दिनों तक रहे। १६५२ ई० में पण्डित जवाहर नेहरू, उन्हें लोकसभा के सदस्य के रूप मे ले गये। बरुआजी की स्पष्टवादिता तेजस्विता की सब मुक्त कंठ से प्रशंसा करते हैं।

परिचय, प्रशस्ति, प्रचार, प्रतिष्ठा आदि से परे उनके जीवन में मानवत ऐसा सुन्दर-सांगोपांग प्रतिनिधित्व और विकास हुआ है कि लेखक और विचारव उनके सम्बन्ध मे लिखते हुए यह कठिनाई सामने आती है कि वे ऐसे व्यक्ति की अने नेक घटनाओं मे से किस घटना को चुनें जिसका समस्त जीवन प्रकाशमान हो, ओ जाज्वल्यमान नक्षत्र नहीं, आभाशील शशि-सा शीतल तथा आलोक-पुंज रवि प्रखर और तेजोमय हो। ऐसे व्यक्ति के विषय मे उसकी विशेष कला का उल्लेख प्रतीत होता है। ऐसे ही व्यक्ति इतिहास के निर्माता होते हैं या इतिहास ऐसे व्यक्ति से सुशोभित होता है।

१६४४-४५ ई० मे महात्मा गांधी ने हिन्दुस्तानी का आन्दोलन छेड़ा। काम के लिए आचार्य काका कालेलकर ने भारत के हर प्रान्त मे भ्रमण किया। हि स्तानी के प्रचार के लिए उनका कार्यक्रम बिहार के लिये भी बना। भारतरत्न राजेन्द्रप्रसाद जी ने पत्र लिखकर मुझे 'सदाकत आश्रम' पटना मे बुलाया। मै वहाँ ग उन्होंने काका कालेलकर साहब का कार्यक्रम मुझे बतलाया और उनके साथ बिहा घूमने को कहा। निश्चित तिथि को काका कालेलकर साहब आये। राजेन्द्र बा सब सभी जगह चले गये। काका कालेलकर साहब के साथ बिहार-भ्रमण किया। हम लोग रेलगाड़ी या जहाज मे चलते थे तब काका साहब भारत के कवियों कविताएँ समझाते हुए सुनाते थे। उनका अन्तिम भाषण मुंगेर मे हुआ। बाद उन्होंने असम के लिए प्रस्थान किया। उनके साथ मे कटिहार तक गया। मुं बाद से जब जहाज चला, वे असमिया भाषा-भाषियों के कवियों की कविताएँ अर्थ साथ सुनाने लगे। उन्होंने महाकवि श्री देवकान्त बरुआ की अनेक कविताएँ सुनाई मै बरुआजी का नाम उसी समय से जानता हूँ, हालाँकि मैं १६२७ ई० मे असम का दौरा किया था और वहाँ के लोगों का परिचय प्राप्त किया था। १६

ई० में मैंने दिल्ली में महाकवि को देखा था लेकिन परिचय नहीं कर सका। जब वे विहार के राज्यपाल होकर पटना पधारे, मैंने उनसे मिलने का कार्यक्रम बनाया। लेकिन 'बिनु हरि कृपा मिलहिं नहि सन्ता', मैं उनसे मिल नहीं सका।

पहली जनवरी, १९७२ ई० की रात्रि में लोकसभा-सदस्य श्री शंकरदयाल सिंह जी का फोन आया। दूसरी जनवरी '७२ को श्री रवीन्द्रनारायण गाड़ी लेकर आये। हम लोग पटना पहुँचे। श्री शंकरदयालसिंह के निवास-स्थान पर उनसे बातें हुईं। उन्होंने कहा कि मैंने 'युद्ध के आस-पास' नामक एक नयी पुस्तक लिखी है जिसका उद्घाटन आज महामहिम राज्यपाल श्री बरुआ छह बजे शाम को पर्यटन-भवन में करेंगे और आप लोग समय पर वहाँ आ जायें। वहाँ से हम लोग चले आये और राष्ट्रकवि श्री दिनकर जी के यहाँ गये। वहाँ हम लोग एक घण्टे तक रहे। श्री रवीन्द्र आदि चाय-जलपान करते रहे। फिर हम लोग वहाँ से पर्यटन-भवन में पहुँचे। श्री शंकरदयाल जी समय से कुछ पहले पहुँचे। महाकवि ठीक समय पर पहुँचे। उन्हें देखने के बाद दिल में बैठ गया कि यह रूप तो मैंने कई बार दिल्ली तथा गाड़ी आदि में देखा है।

उद्घाटन-भाषण-क्रम में उन्होंने कहा कि इस पुस्तक की चार-पाँच हजार प्रतियाँ फ़ौजी लोगों में बँटवा दी जायें तो मुझे बड़ी प्रसन्नता होगी। उद्घाटन-भाषण के बाद श्री शंकरदयाल जी ने कहा कि इस पुस्तक की जो रॉयल्टी मुझे मिलेगी उसकी रकम मैं दे दूँगा। मैंने कहा कि मैं पाँच सौ रुपये दूँगा जिससे पुस्तकें खरीदकर बँटवा दी जायें। महामहिम राज्यपाल ने भूतपूर्व मन्त्री तथा विहार के नेता श्री रामलखनसिंह यादव से मेरा परिचय पूछा। जब राज्यपाल महोदय जाने लगे तब मैं उनसे बातचीत करता हुआ उनकी मोटर तक गया। जब वे चले गये, तब फिर बैठे। श्री रामलखनसिंह ने कहा—आपके विषय में राज्यपाल पूछ रहे थे।

श्री हनुमान प्रसाद पोद्दार :
अतिमानवीय अनासक्त व्यक्तित्व

मैं प्रथम बार पण्डित हनुमानप्रसाद जी पोद्दार से अप्रैल, १६३२ ई० में गोरखपुर में 'कल्याण'-कार्यालय में मिला था। उसके बाद जब-जब गोरखपुर जाता, उनका दर्शन अवश्य करता; कभी-कभी 'कल्याण' के लिए कविता भी देता। मँझोला कद, भरा हुआ शरीर, उन्नत-प्रशस्त भाल, गोधूमी रंग, ललाट पर गोपी-चन्दन की एक बिन्दी, प्रसन्न आनन, श्वेत-शुभ्र खादी की धोती, खादी का कलीदार कुरता, आँखों में दिव्य चमक और पैरों पर फलाहारी जूते—यही उनकी वेशभूषा थी। उनकी बातों में जादुई आकर्षण था। उनकी दृष्टि में जादुई प्रेम था। वे आपाद-मस्तक सहृदय थे। वे सौहार्द की मूर्ति थे। उनके व्यक्तित्व का आकर्षण दिव्य था। उनकी व्यावहारिक मधुरता दिव्य थी। मैंने अनुभव किया कि जो भी उनसे एक बार सम्पृक्त होता है, सदा के लिए उनका हो जाता है। मेरे हृदय में उनके प्रति जो स्वाभाविक आस्थामयी श्रद्धा जागृत हुई उसका रंग काल के अन्तराल से गाढ़ा होता गया है। तब वे शहर से बाहर रेलवे लाइन से दो-तीन मील उत्तर एक उपवन में रहते थे जिसमें आम, अमरूद और लीची के पेड़ों का विशाल वन था। मकान में दो-तीन कमरे थे। लेकिन सर्वत्र सादगी थी, सुरुचि-सम्पन्नता थी और नैसर्गिक सौन्दर्य था। आर्षयुगीन वैदिक वातावरण था। 'कल्याण'-परिवार में श्री नन्ददुलारे वाजपेयी, पण्डित गर्दे जी, पण्डित राजबली पाण्डेय, श्री गोस्वामी जी, श्री ब्रह्मचारी गोपाल चैतन्यदेव, श्री चन्द्रदीप जी, श्री देवधर जी, श्री भुवनेश्वर मिश्र 'माधव' आदि थे। विशाल छायादार आम्रतरु के नीचे टाट बिछता था जिसपर काम होता था। न कुर्सी थी, न टेबिल थी, न फोन था, न पंखा था। प्रभात में प्रार्थना, कीर्तन, सत्संग और प्रवचन तथा संध्या में कीर्तन और हरि-कथा। जब से मैं पोद्दारजी से परिचित हुआ तब से जब कभी मैं गोरखपुर जाता था, उनके दर्शनार्थ आम्रकुञ्ज में अवश्य जाता था।

मैं 'कल्याण' में प्रकाशनार्थ अपनी कविताएँ भी भेजता था। 'कल्याण' का शक्ति-विशेषांक निकलनेवाला था। मैं गोरखपुर में ही था। एक कविता लिखकर ले गया जिसका शीर्षक था—'अम्बे'। पूरी कविता यों थी—

उठ, तमक तान अम्बे ! त्रिशूल।
जीवन की यह जड़ता कराल,

यह जगत् वासना में बेहाल,
पापों की ज्वाला बीच भीष्म,
झुलसा-सा यह शुचिता-प्रवाल।
अघ-कीट सेवते विश्व-मूल,
उठ, तमक तान अम्बे ! त्रिशूल।
सेवा-व्रतियों में त्याग नहीं,
प्रणयों में टुक अनुराग नहीं,
शूरों में लज्जा का न लेश,
यतियों में अल्प विराम नहीं।
सबका है, आडम्बर फ़िज़ूल,
उठ, तमक तान अम्बे ! त्रिशूल।
तू जननि आज उठ वेग जाग,
दे लगा सृष्टि में एक आग,
जल जायें पाप, वासना और
जागे कण-कण में प्रेम - राग।
दे पाप - हृदय में तीव्र हूल,
उठ, तमक तान अम्बे ! त्रिशूल।

कविता पोद्दारजी को दी। वे उसे एक नजर से देख गये और प्रेम-भरे शब्दों में पूछा—'इसमें कुछ संशोधन कर दूं ?' मैंने नम्रतापूर्वक उत्तर दिया—'आपको पूरा अधिकार है।' उन्होंने कविता में प्रयुक्त 'फिजूल' शब्द की जगह 'समूल' शब्द लिखा। मेरी 'रजनी' पुस्तक उसी साल छप रही थी। हिन्दी पुस्तक एजेन्सी, ज्ञानवापी, काशी के श्री वैद्यनाथ केडिया को यह पुस्तक पहले ही दे दी थी। 'अम्बे' शीर्षक कविता में जब पोद्दार जी ने 'फिजूल' शब्द संशोधित किया तब मैंने केडिया जी को पत्र लिखा कि यह संशोधित रूप में छपे ; लेकिन केडिया जी ने मुझे सूचित किया कि पत्र पाने के पूर्व कविता छप गयी थी और संशोधन द्वितीय संस्करण में हो जायेगा।

पोद्दारजी को उनकी धर्मपत्नी और कन्या ही नहीं, लाला लाजपतराय, पण्डित मदन मोहन मालवीय, गांधी जी, राजर्षि पुरुषोत्तम दास टंडन, जमनालाल जी बजाज, युगल किशोर जी बिड़ला, कृष्णकान्त जी मालवीय, सम्पूर्णानन्द जी रफी अहमद किदवई, लालबहादुर जी शास्त्री, शिव प्रसाद गुप्त जी, वासुदेव शरण अग्रवाल, जैनेन्द्रकुमार जी, मैथिलीशरण गुप्त, हजारी प्रसाद द्विवेदी, 'बच्चन' जी, स्नेही आत्मा जी आदि भी 'भाई जी' सम्बोधित करते थे। यह उनकी विशिष्ट साधना का परिणाम नहीं, भगवत्कृपा का फल था। उन्होंने 'वासुदेवः सर्वमिति' की सिद्धि प्राप्त कर ली थी जिसका साक्ष्य उनका सम्पूर्ण जीवन था एवं उनका अपरिमित वाङ्मय भी। महर्षि अरविन्द ने जिस सत्य की अनुभूति उत्तरपाड़ा में की थी उसकी प्राप्ति उन्होंने कर ली थी जिसका प्रमाण उनका प्रत्येक श्वास-प्रश्वास प्रस्तुत करता था। वे अनासक्त सेवा-परायण थे। वे निष्काम कर्मयोगी थे। उनकी सार्वकालिक

ने उन्हें अपार कीर्ति दी थी ; लेकिन कीर्ति ने उनके मन में अहंकार की छाया तक उत्पन्न न की। उन्होंने न कभी अपने नाम का बोर्ड लगाया, न अपने नाम का प्लेट अपने निवासस्थान पर लगाया। वे मूक साधी थे। उनका व्यक्तित्व अतिमानवीय था और इस कलि-युग में दुर्लभ था। वे विशुद्ध वैष्णव मत के विश्वासी थे लेकिन सभी धर्मों एवं सम्प्रदायों के प्रति श्रद्धावान् रहे। वे सर्वधर्म-समन्वयी थे। वे इस विचार-धारा के पोषक थे—

'जग देखे मेरी आँखों से बड़ी भूल है,
यह विचार ही हर अनर्थ का महा मूल है।'

यही कारण है, उनके मित्र सभी प्रकार के राजनैतिक, सामाजिक और साहित्यिक व्यक्ति थे। उनके कुछ मित्र नास्तिक भी थे हालांकि उनकी मान्यता थी कि कोई व्यक्ति नास्तिक नहीं होता—वह भ्रम में होता है। उनकी निर्भीकता और निःस्पृहता अनुकरणीय थी। अंग्रेजी शासन ने उन्हें 'राय बहादुर' और 'सर' से विभूषित करना चाहा था और स्वतंत्र भारत में पण्डित गोविन्दवल्लभ पन्त ने 'भारत-रत्न' से अलंकृत करने की एवं राज्य-सभा में सदस्य मनोनीत करने की स्वीकृति उनसे चाही थी किन्तु उन्होंने सबको मोहित फन्दा माना और फन्दे से बाहर रहे। रामनाम में उनका अखण्ड विश्वास था। वे इस रामनाम को भी प्रकाश मानते थे—'भाय कुभाय अनख आलसहू।' उनकी मान्यता थी कि नाम रोग-मुक्ति, ऋण-मुक्ति, भय-मुक्ति, शोक-मुक्ति, चिन्ता-मुक्ति आदि के साधन हैं। वे कहते थे कि 'नामानुराग' रूपानुराग, लीलानुराग और लीला-प्रवेश का मूल है, प्रेम-साधना भक्ति का प्राण है और प्रेम-सर्वस्व-समर्पण एक-मात्र साधना है। इस दृष्टि से प्रेम साधना है और साध्य भी। यह मानव-जीवन का परम पुरुषार्थ है। संक्षेप में पोद्दारजी सर्वात्मवादी थे—

आराधितो यदि हरिस्तपसा ततः किम्
नाराधितो यदि हरिस्तपसा ततः किम्
अन्तर्बहि यदि हरिस्तपसा ततः किम्
नान्तर्बहि यदि हरिस्तपसा ततः किम्

उन्होंने आजीवन नास्तिकता से संघर्ष किया ताकि धर्म की रक्षा हो। वे आध्यात्मिकता के दृढ़संकल्पी प्रचारक-प्रसारक थे। वे अध्यात्मवाद के दूत थे। वे धर्म के मूर्त रूप थे। वे सनातनधर्म के युग-सन्देशवाहक थे। वे हिन्दुत्व के प्राण थे। वे हिन्दी और हिन्दुस्तान के निष्ठावान् पुजारी थे। वे अनास्था के युग में आस्था के मणि-दीप थे।

वे अपने आरम्भिक जीवन-काल में क्रान्तिकारी देश-भक्त थे। उन्होंने बंग-भंग-आन्दोलन में सक्रिय योग दिया था। उन्होंने स्वतंत्रता-आन्दोलन में सक्रिय योग दिया था जिसके फलस्वरूप उन्होंने अलीपुर जेल में १९१६ ई० में कठोर यातनाएँ सही थीं। इसके बाद वे भारत-सुरक्षा कानून के अन्तर्गत गिरफ्तार हुए और पश्चिम बंगाल के बांकुड़ा जिले में नजरबन्द कर दिये गए थे। सन् १९१८ ई० में जब वे नजरबन्दी जीवन से मुक्त हुए तब बंगाल से निष्कासित कर दिये गये। अपने नजरबन्दी जीवन में

ने अन्तर्मुखी हो गये और धर्मशास्त्रों का गहन अध्ययन किया था एवं आध्यात्मिक साधना में लीन रहते थे।

सनातनधर्म के प्रचार के उद्देश्य से उन्होंने १९२६ ई० में 'कल्याण' के प्रकाशन का श्रीगणेश किया। यह कार्य कितना पुण्यमय था, वर्णनातीत है। 'कल्याण' ने करोड़ों व्यक्तियों का कल्याण किया। भारत और विश्व में धार्मिकता के प्रचार में उसकी देन स्वर्णाक्षरों में अंकित है। उसके विशेषांक साहित्य-संस्कृति की अमूल्य निधियाँ हैं।

वे गीता, गायत्री, गंगा और गौ के प्रति अनन्य श्रद्धा-भक्ति पालते थे। वे गो-हत्या बन्द कराना चाहते थे, इसलिए उन्होंने इसके विरोध में अपनी आवाज बुलन्द की थी। सन् १९६६ ई० में 'भारत गो-सेवक समाज' ने जब गो-वध को बन्द करने के लिए आन्दोलन आरम्भ किया तब उन्होंने उसका पूर्णरूपेण समर्थन किया था। वे 'भारत गो-सेवक समाज' के उपाध्यक्ष थे और 'सर्वदलीय गो-रक्षा महाभियान समिति' के वरिष्ठ नेता थे। उनकी मान्यता थी कि जब तक भारत में गो-हत्या बन्द न होगी तब तक भारत उत्थान की ओर अग्रसर न होगा। वे भारत को 'हिन्दू राज' मानते थे।

उन्होंने लगभग तीन दर्जन ग्रंथों का प्रणयन-सम्पादन किया था। इन ग्रंथों में 'श्री राधा-माधव-चिन्तन', 'श्री कृष्ण-महिमा का स्मरण', 'श्री राधा-माधव का मधुर रूप-गुण-तत्त्व' आदि विशेष रूप से लोकप्रिय हैं।

वे कर्मठता, संकल्पशीलता और तेजस्विता की त्रिवेणी थे। उन्होंने हिन्दू-धर्म के अभ्युत्थान के लिए जितना कार्य किया है, उतना कार्य स्यात् किसी ने इस युग में नहीं किया। उन्होंने हिन्दू धर्म की गूढ़ बातें सरल भाषा में सर्वसुलभ बनायीं और ईसाई धर्म-प्रचारकों के षड्यन्त्र को पंगु कर दिया। वे मनीषी थे। उनकी मनीषा हिन्दू धर्म-उन्नयन में रमती थी।

विगत २२ मार्च, १९७१ ई० को जब मुझे समाचारपत्रों से ज्ञात हुआ कि वे बहुत अस्वस्थ हैं तब मैं उसी रात में बरौनी जंक्शन से उनके दर्शनार्थ गोरखपुर पहुँचा। लेकिन ईश्वरेच्छा दूसरी थी। २३ मार्च, '७१ ई० के प्रभात में गोरखपुर में मुझे ज्ञात हुआ कि गत २२ मार्च '७१ के प्रभात में उन्होंने नश्वर शरीर का त्याग कर दिया। मेरे साथ डॉ० श्रीकृष्ण देवनारायण अग्रवाल भी थे। इस समाचार से हम लोग मर्माहत हो गये। उनकी अन्त्येष्टि 'गीता-वाटिका, गोरखपुर' में हुई थी। हम लोगों ने उनकी समाधि पर श्रद्धांजलि अर्पित की और उनकी चिरशान्ति के लिए ईश्वर से प्रार्थना की। वे २९ सितम्बर, १८७९ ई० में उद्भूत हुए थे।

उनका पार्थिव शरीर नष्ट हो गया लेकिन जब तक विश्व में हिन्दुत्व जीवित रहेगा, वे अपने यश शरीर से अमर रहेंगे। गोरखपुर से लौटने पर मैंने एक पत्र श्री शिवशरणजी को भेजा था जिसके उत्तर में उन्होंने लिखा,—

५, सफदरजंग लेन
नई दिल्ली-११
अप्रैल, १९७१

प्रिय भाई,

२६ मार्च का पत्र आज मिला। मेरा ख़याल है, वहाँ से अच्छे डॉक्टर पटने में हैं।

२६ मार्च को मैं भी गोरखपुर गया था। २७ को गीता-वाटिका गया और पोद्दार जी की समाधि पर मैंने भी फूल चढ़ाये। मौनी बाबा के भी दर्शन किए।

फिर गोरखनाथ आश्रम गया और योगिराज बाबा गंभीरनाथ की समाधि पर ध्यान किया।

मैं २४ के दिन में पटना रहूँगा। फिर २६ को भी रहूँगा। २५ को लक्ष्मीसराय रहना है। २६ को पटना से दिल्ली के लिए प्रस्थान करूँगा।

तुम्हें भगवान् नीरोग करें!

तुम्हारा
दिनकर

राजर्षि पुरुषोत्तमदास जी टंडन

साहित्य और राजनीति—मेरे जीवन के ये दो कार्य-क्षेत्र बचपन से रहे हैं। दोनों
छोटे-बड़े महारथियों से मेरा सम्बन्ध रहा है। टंडनजी दोनों क्षेत्रों के मूर्धन्य महार
थे। मैंने उनके सर्वप्रथम दर्शन १९१० ई० में किये थे। मेरे मस्तिष्क में उनसे सम
विपुल स्मृतियाँ हैं। मैं अपने ग्राम सिताबदियारे से अपने परिवारवालों के साथ बच
से ही काशी की यात्रा करता था। ८ अक्टूबर, १९१० ई० को मैं अपने चचेरे भाई
सन्तप्रसादसिंह के साथ काशी गया था। मेरी माता भी हम लोगों के साथ थीं। व
पुण्य पर्व था। हम लोग हरिश्चन्द्र हाई स्कूल से पश्चिम अपने एक कौटुम्बिक जन
यहाँ ठहरे हुए थे। जहाँ हम ठहरे हुए थे उससे पूर्व कुछ दूरी पर १० अक्टू
१९१० ई० को साढ़े ग्यारह बजे पूर्वाह्न में 'अखिल भारतवर्षीय हिन्दी साहि
सम्मेलन' का प्रथम अधिवेशन प्रारम्भ हुआ। सभापति थे महामना पण्डित मदनमो
मालवीय और प्रधान मन्त्री थे टंडनजी। मैं अपने बड़े भाई संतप्रसादसिंह जी के स
वहाँ गया था। यही दोनों महापुरुषों के प्रथम दर्शन मैंने किये थे।

'अखिल भारतवर्षीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन' का वार्षिकोत्सव १९१४ ई०
भागलपुर में सम्पन्न हुआ था। उस समय विश्वमोहन बाबू के चाचा रमला
भागलपुर में बी० एन० डब्लू० रेलवे के कचहरी-स्टेशन के सहायक स्टेशन मास
थे। मैं अपने बड़े भाई मँगनीसिंह जी के साथ भागलपुर गया और रमला बाबू
यहाँ ठहरा। टंडनजी को नजदीक से देखने का अवसर मुझे भागलपुर में प्राप्त हुआ
प्रथम बार उनसे वार्तालाप या दो-चार बातें करने का सौभाग्य मुझे प्राप्त हुआ
सम्मेलन द्वारा जितनी परीक्षाएँ प्रचलित हैं उनसे सम्बद्ध प्रस्ताव उन्होंने भागल
अधिवेशन में ही स्वीकृत कराया था।

कालान्तर में प्रयाग से 'अभ्युदय' नामक एक मासिक पत्रिका प्रकाशित
जिसके सम्पादक टंडनजी थे। मैंने वह पत्रिका मँगायी और कुछ ग्राहक भी ब
दिये। पत्रिका के कुछ अंक मेरे पास सुरक्षित हैं जो टंडनजी की स्मृतियों की धरोहर

असहयोग-आन्दोलन के बाद अनेक बार जहाँ-तहाँ उनसे मेरी भेंट होती रह

बहुत बड़ी विशिष्टता थी। वे बहुत दयालु थे। वे मानवता के अनुल निदर्शन थे। सम्भव है, राजनीतिज्ञ टंडनजी को लोग कुछ वर्षों में विस्मृत कर दें, लेकिन साहित्यिक टंडनजी को भूलना आसान न होगा। वे मौलिक चिन्तक या विचारक थे जिसकी विद्वत्तापूर्ण छाप उनके लेखन, प्रवचन और भाषण पर लक्षित होती है। उनमें महती विद्वत्ता और अद्भुत मौलिकता का मणि-कांचन-योग था। वे आपाद-मस्तक कर्मठ थे।

बहुत लोग ऐसे हैं जो अपने आदर्श, स्वाभिमान और पुराने साथी-संगियों को एवं अपने कर्तव्य को पद के पीछे भूल जाते हैं। वे अपने पद की सुरक्षा के लिए अपने व्यक्तित्व को तिलांजलि दे देते हैं। सामाजिक जीवन में ऐसे व्यक्तित्व का मूल्य नगण्य होता है। जब तक वे कुर्सियों पर होते हैं, उनके इर्द-गिर्द स्वार्थियों का जमघट लगा रहता है जो उनकी खुशामद में जमीन और आसमान के कुलाबे मिलाते रहते हैं। लेकिन जब उनकी कुर्सियाँ छिन जाती हैं तब बुलाने पर भी स्वार्थी लोग उनके पास नहीं फटकते, न उनके द्वार पर जाकर दो बातें करना उचित समझते हैं। ऐसे बहुत कम व्यक्ति हैं जिन्होंने ऊँचे-से-ऊँचे पद को सुशोभित किया और अपने सुख-दुःख में साथ रहनेवाले साथियों को सर्वदा विस्मृत नहीं किया। टंडनजी ऐसे व्यक्तियों में अग्रगण्य थे।

१६२८ ई० में मैं श्री चन्द्रचूड़देव जी के साथ आगरा गया था। वहाँ श्री चन्द्रचूड़देव जी अपने एक साथी से मिलने गये जो टंडनजी के सम्बन्धी थे। उन्होंने कहा—"आज यहाँ क्रिकेट मैच है। नामी-गिरामी खिलाड़ी आये हैं। वहाँ श्री पुरुषोत्तमदास जी टंडन पारितोषिक वितरण करेंगे।' यह बात बहुत कम लोग जानते हैं कि टंडनजी स्वयं क्रिकेट के प्रसिद्ध खिलाड़ी थे। हम तीनों क्याक्वि कालेज के विस्तृत मैदान में गये। श्री टंडनजी कुर्सी पर बैठे थे और लोगों से बातें कर रहे थे। मैंने उन्हें प्रणाम किया। उन्होंने पूछा—"आप यहाँ कब आये?" मैंने उन्हें सारी बातें कहीं। फिर उन्होंने हम लोगों के लिए कुर्सियाँ मँगवायीं। हम लोग वहाँ बहुत देर तक बैठे। चूँकि हम लोगों को इटावा जाना था, इसलिये मैच खत्म होने के पूर्व ही उनसे विदाई ली और उन्हें प्रणाम किया। गाड़ी आने का समय हो चुका था। हम लोग स्टेशन चले गये।

सन् १६५२ ई० की बात है। श्री टंडनजी 'अखिल भारतवर्षीय कांग्रेस कमिटी' के सभापति थे और डॉ० लक्ष्मीनारायण 'सुधांशु' बिहार प्रान्तीय कांग्रेस कमिटी के अध्यक्ष थे। बिहार के कई जिलों में श्री टंडनजी के दौरे का कार्यक्रम बना। डॉ० सुधांशुजी ने मुझे भी टंडनजी के साथ रहने को पत्र लिखा। मैं सभी जिलों में उनके साथ नहीं जा सका क्योंकि मेरे बड़े भाई श्री मँगनीसिंह जी का देहान्त हो गया था। जब श्राद्ध-कार्य सम्पन्न हो गया, मैं टंडनजी के साथ जाने को मुजफ्फरपुर पहुँचा। मुजफ्फरपुर से हवाई जहाज से पुर्णिया जाना था। हम लोग हवाई अड्डे पर पहुँचे। टंडनजी को विदा करने के लिए हजारों की भीड़ फूलमालाएँ लिये हुए थी। महेश बाबू ने मुझे कहा—"मैं तो आपका इन्तजार कल से ही कर रहा था।" मैंने उन्हें श्राद्ध-

कार्य की सम्पन्नता की बातें बतलायी। हवाई जहाज पटने से आया। मैं टंडनजी और सुधांशुजी के साथ जहाज में सवार हुआ।

हम लोग कटिहार हवाई अड्डे पर उतरे। हजारों की भीड़ ने फूल-मालाओं और जय-जयकार से टंडनजी का स्वागत किया। मोटर से हम लोग डाक बँगले में गये। वहाँ श्री अनूपलाल मेहता सारी व्यवस्था किये हुए थे। नगरपालिका में सभा हुई। श्री टंडनजी को मान-पत्र प्रदान किया गया। वहाँ से हम लोग कटिहार स्टेशन गये और थर्ड क्लास के एक डब्बे में बैठे। गाड़ी खुली। स्टेशन से कुछ दूर जाने के बाद कुछ लोगों ने गाड़ी रोक दी। जब गाड़ी बढ़ती थी, वे उसपर रोड़े-पत्थर बरसाने लगते थे और गाड़ी रुक जाती थी। श्री नाथ साहब (आई० पी० एस०) एस० एस० पी० थे उन दिनों वहाँ ही। वे उनकी बेजा हरकतें देख रहे थे और चुपचाप बर्दाश्त कर रहे थे। तब मैंने श्री नाथ साहब से कहा—"संगठन में शक्ति है लेकिन शक्ति अनुशासन के बिना नहीं हो सकती।" जब पत्थर-रोड़ों की वर्षा से लोगों ने कई बार गाड़ी रोकी तब मैं गाड़ी से उतरकर उनकी ओर दौड़ा। पुलिस और पदाधिकारी भी दौड़े। लोगों को बहुत दूर तक खदेड़ा। लौटकर गाड़ी खुलवायी। तब गाड़ी निर्विघ्न रूप से बढ़ी।

चन्द घण्टों में हम लोग बरसोई पहुँचे। बाद में ट्रॉली से एस० पी० आदि भी आये। बरसोई में श्री वैद्यनाथ चौधरी ने एक विशाल सभा आयोजित की थी जिसमें टंडनजी ने भाषण किया। रात में हम लोग बरसोई में ठहरे। टंडनजी के पास मूँज की एक छोटी-सी मंजूषा थी जिसे ग्रामीण भाषा में 'पौती' कहते हैं। इसमें वे अपने दो-चार कपड़े रखे हुए थे। रात में भोजन के पूर्व उन्होंने अपने वस्त्र उतार-कर मंजूषा में रख दिये। बातचीत के सिलसिले में मैंने कहा—"पहले भारत के घर-घर में औरतें 'पौती' बीनती थी और उसमें ही सामान रखती थी। हमारे घर में भी बड़ी-बड़ी 'पौतियाँ' थी।" उन्होंने पूछा—"आपका घर बिहार के किस जिले में है?" मैंने हँसते हुए उत्तर दिया—"जहाँ भारत के बड़े-बड़े लोग पैदा होते हैं।" उन्होंने फिर पूछा—"क्या छपरा?"

"जी, हाँ! मेरा घर छपरा जिले के अन्तर्गत 'सिताब दियारा' नामक ग्राम है जहाँ जयप्रकाश बाबू का घर है।"—मैंने कहा। इसके बाद जयप्रकाश बाबू और राजेन्द्र बाबू के बारे में बातें होने लगी। टंडनजी ने जयप्रकाश बाबू की भूरि-भूरि प्रशंसा की और कहा—

"जवाहरलाल जी उन्हें बहुत मानते हैं और उन्हें अपने मन्त्रिमण्डल में उप-प्रधान मन्त्री का पद देना चाहते हैं लेकिन जयप्रकाश जी हैं कि उपप्रधान मन्त्रित्व और देखना भी नहीं चाहते। ऐसे कितने निर्लोभ व्यक्ति भारत में होंगे!" उन्होंने राजेन्द्र बाबू की त्याग-तपस्या की भी भूरि-भूरि प्रशंसा की जिसे सुनकर मैं हार्दिक रूप से प्रसन्न हुआ। मैंने उनसे पूछा कि जिस समय लोग रोड़े-पत्थर फेंक रहे थे उस समय आप कुछ क्यों नहीं बोले? इसपर उन्होंने कहा—"वह ऐसा दृश्य था कि कुछ बोला ही नहीं गया।" मैंने उन्हें कहा—"भविष्य वर्तमान से जुड़ा होता है

गे प्रेरणा पाता है। अभी यह हाल है तो बाद में क्या होगा ?" इस विषय पर
तें हुईं।

दूसरे दिन हम लोग बरसोई से कटिहार आये। ए० एम० पी० श्री नाथ साहब
कहा— 'यसवाली हालत देखी ? केस किया था नहीं ?" उन्होंने कहा—"केस
है।"

हम लोग डाक बँगले में गये। भोजनोपरान्त पटने से हवाई जहाज आया।
श्री ने टंडनजी से घर जाने की आज्ञा ले ली। हम लोग हवाई अड्डे पर गये।
के अवसर पर कुरसैला के रायबहादुर रघुवंशप्रसादसिंह भी थे। वे भी हम
के साथ जहाज पर सवार हुए। हजारों की भीड़ ने मालाओं और जयजयकार से
जी को विदाई दी। जब जहाज कुरसैला के सामने आया, रायबहादुर ने अपना
टंडनजी को दिखलाया। बातचीत करते हुए हम लोग पटना पहुँचे।

डॉ० अनुग्रह नारायण सिंह, ठाकुर गिरिजा नन्दन सिंह एम० एल० ए०,
रोगा प्रसाद राय उपमन्त्री (बिहार के भूतपूर्व मुख्य मन्त्री) आदि टंडनजी को
मालय में ले गये। कुछ देर के बाद बनारस से दरभंगा महाराज का जहाज
और टंडनजी को बनारस ले गया। जब वह जहाज पटना लौटा तब उसी
ज में डॉ० अनुग्रहनारायणसिंह ने मेरी व्यवस्था करवा दी। मैं कवि गीतेश के
बेगूसराय में उतर गया और रघुवंश बाबू उसी जहाज से कुरसैला चले गये।

बहुत दिनों के बाद डॉ० सुधांशु के 'भार' ब्लॉकवाले डेरे में श्री नाथ साहब
ट हुई। मैंने १९५२ ई० के कटिहार का जिक्र करते हुए उनसे पूछा—"मुकदमे
क्या हुआ ?" उन्होंने कहा—"टंडनजी से पूछा गया तब उन्होंने कहा कि कटिहार
कुछ नहीं हुआ था। हम लोगों के आने-जाने में दिक्कत नहीं हुई।" इसी पर मुकदमा
म हो गया। मैंने सोचा—'मनुष्य जितना ऊपर उठता जाता है उतना ही समदर्शी
जाता है। अच्छे-बुरे का विचार जगह की ऊँचाई-निचाई के विचार के समान है।
ष्य जितना ऊपर उठेगा, उसके लिए दोनों एक होते जायेंगे।' कहते हैं, चन्द्रमा में
ाड़ और समतल दोनों हैं, लेकिन हम सबको एक-समान देखते हैं अच्छे बुरे के
बन्ध में ऐसा ही समझना चाहिए।

१९५२ ई० में ए० आई० सी० सी० की बैठक बंगलोर में थी। मैं अपने
थियों के साथ वहाँ पहुँचा और डॉ० लक्ष्मीनारायण सुधांशु के साथ अतिथि-भवन
ठहरा। कार्यकारिणी के सदस्य वहीं ठहरे थे। डॉ० अनुग्रहनारायणसिंह के ठहरने
व्यवस्था उनके एक मित्र ने की थी अपने मकान में। वह मकान बहुत बड़ा था
ौर फूल-पत्तियों से सज्जित था। एक दिन के बाद डॉ० सुधांशु भी वहीं चले गये।
ॉ० अनुग्रहनारायणसिंह ने हम लोगों को भी वहीं बुला लिया। वहीं टंडनजी डॉ०
नुग्रहनारायणसिंह से मिलने को पधारे और मुझसे पूछा—'आप भी यहीं ठहरे
? ' मैंने कहा—'जी !' मैं उन्हें अनुग्रह बाबू के यहाँ ले गया। दोनों ने आधे घण्टे तक
ातचीत की। जब टंडनजी बाहर जाने लगे, हम लोग डॉ० अनुग्रहनारायण के साथ
उनकी मोटर तक गये। उन्होंने कहा—'सुधांशुजी कहाँ हैं ? भेंट हो तो कह दीजिएगा

कि वे मेरे पास आयें।' जब टंडन जी चले गये तब डॉ॰ अनुग्रहनारायणसिंह और डॉ॰ लक्ष्मीनारायण 'सुधांशु' पण्डित जवाहरलाल नेहरू के यहाँ गये और उसके बाद वे पुन: टंडनजी के यहाँ गये। मैं भी दोनो महापुरुषो के साथ-साथ दोनो महापुरुषो के पास गया था और उनकी बातचीत मे भाग लिया था। जहाँ सिद्धान्त की बात आती थी, ऐसा प्रतीत होता था कि दोनों अलग हों और एक-दूसरे से कोई परिचय नही हो; और उसके बाद मालूम होता था जैसे दूध और पानी की तरह वे एक-दूसरे से मिले हुए हों। दोनों अपने विचार और लक्ष्य पर अटल थे।

टंडनजी का जन्म शुक्लपक्ष, द्वितीया, मगलवार, सम्वत् १९३९ विक्रमीय अर्थात् १८८२ ई॰ में हुआ था। उनके पिता का नाम श्री सालिकराम टंडन था जो इलाहाबाद मे एकाउंटेण्ट-जनरल के कार्यालय मे काम करते थे; धार्मिक व्यक्ति थे और स्वामी बाग, आगरा के प्रमुख सत्संगी थे। श्री पुरुषोत्तमदास टण्डन ने हाई स्कूल की परीक्षा गवर्नमेण्ट कॉलेज, इलाहाबाद से पास की और म्योर सेण्ट्रल कॉलेज में प्रविष्ट हुए। साहित्य के प्रति उनकी रुचि जन्मजात थी। पहले वे लोअर कोर्ट मे वकालत करते थे और बाद मे हाईकोर्ट मे वकालत करने लगे थे।

श्री प्रेमचन्द

औपन्यासिक सम्राट् श्री प्रेमचन्द ने मेरी कविताओं पर अपनी सम्मतियाँ दी थीं-
"सुहृद्जी सीधे-सादे वेश में कवि की आत्मा हैं, कवि की भावना हैं और कवि
व्यथा है। उनकी अनुभूतियाँ पाठक को मीठी स्मृतियों के संसार में पहुँचा देती हैं
जब तक कवि स्वयं उस संसार में भ्रमण न कर चुका हो, तब तक पाठक में वह मी
दर्द नहीं पैदा कर सकता है।

जीवन की अनुपम निधियाँ
वे सपने प्यारे-प्यारे,
क्यों कुचल-कुचल कर फेंके
उस निर्जन नदी किनारे ?

ये पंक्तियाँ कोई कवि ही लिख सकता है।"

मेरा उनसे परिचय १९२७-२८ ई० में बनारस में हुआ था। तब वे 'बेनीया पार्क' में एक सुन्दर मकान में रहते थे। मैं सन्ध्या काल में उनके यहाँ जाता था। वे कभी पार्क की बेंच पर बैठे हुए मिलते थे और कभी अपने मकान में। परिचय ने कालान्तर में घनिष्ठता का रूप धारण कर लिया था। बनारस में उन्होंने 'सरस्वती प्रेस' स्थापित किया था जहाँ से मासिक पत्र 'हंस' प्रकाशित होता था। कालान्तर में उन्होंने 'जागरण' नामक एक साप्ताहिक पत्र का भी प्रकाशन किया था। इसमें कभी-कभी मैं भी लिखता था। वे श्री लक्ष्मीनारायण 'सुधांशु' की बहुत तारीफ करते थे जो काशी विश्वविद्यालय के छात्र थे लेकिन साहित्यिक क्षेत्र में पर्याप्त ख्याति पा चुके थे।

एक बार काशी विश्वविद्यालय के 'शिवाजी हॉल' में छात्रों ने एक सभा की थी जिसमें मुख्य अतिथि प्रेमचन्द जी थे। जाड़े की रात थी। रात बहुत व्यतीत हो चुकी थी। सुधांशुजी ने मुझे कहा—"प्रेमचन्द जी को अपने साथ मोटर में लेते जाओ और उनको घर पहुँचा देना।" सभा-समाप्ति के बाद सुधांशुजी उन्हें ले आये और मोटर में बिठा दिया। मैं उनके साथ चला। रास्ते में बहुत बातें हुईं। उन्होंने मुझे कहा—"सुहृद्जी, आप बड़े भाग्यशाली हैं। आपका हर तबके के लोगों के साथ परिचय है, घनिष्ठता है और अपनापन है।" मैंने उन्हें कहा—"सब ईश्वर-कृपा है तथा माता-पिता के पुण्य का प्रताप है।" उन्होंने कहा—"आप ठीक ही कहते हैं। मैं देखता

श्वर के प्रति आपका अखण्ड विश्वास है।" मैंने उन्हें घर तक पहुँचाया और अपने
लौटा।

मैंने अनुभव किया कि वे शालीनता, सद्भावना, सरलता और सात्विकता की
थे। उनका व्यक्तित्व आवरणहीन था। उनका जीवन-मार्ग रहस्यमय या गोप्य नहीं
उनकी रचनाओं में हृदय को आकृष्ट करने की अद्भुत क्षमता है। उनमें आह्ला-
का पर्याप्त पुट है। इसी प्रकार उनका सहवास भी आकर्षण-पूर्ण और माधुर्य-
। इस आकर्षण और माधुर्य की जननी उनकी कला नहीं थी। उनकी कला की
उनके व्यक्तित्व से आलोकित है। अभिप्रेत अर्थ यह है कि वे अपनी सर्जना-
के ऋणी नहीं थे वरन् उनकी सर्जना-शक्ति ही उनकी ऋणधारिणी थी।

उनका बाह्य व्यक्तित्व आकर्षणमय नहीं था। उनके आनन-मण्डल पर रूक्षता
की केश-राशि में अस्त-व्यस्तता थी, उनकी वेश-भूषा में साधारणता थी और
आचरण में आडम्बरहीनता थी। वे लिखने-पढ़ने या बैठने-उठने में लापरवाही
थे लेकिन उनका हृदय निर्विकार था जो उनके जीवन और साहित्य दोनों के
सौन्दर्य का सर्जक था। वे उन्मुक्त अट्टहासी थे। उनका अट्टहास उपहासहीन
भ्रा-रहित होता था। उसमें मस्ती का पर्याप्त पुट होता था। वे उन्मुक्त हँसी
और दूसरों को भी हँसाते थे। क्लेश, परिताप, व्याधि और वेदना में भी वे
आँचल नहीं छोड़ते थे। वे उन क्षणों में अबोध शिशु हो जाते थे, लेकिन
स्थिति में अश्लीलता उनके पास फटकने भी नहीं पाती थी। अभिप्रेत अर्थ
वे मधुर रूप में मिलनसार थे। जो उनसे एक बार मिलता था उनसे बार-
ने का चाव लेकर उनसे विदा लेता था।

नके मन, वचन और कर्म में एकरूपता थी। वे अपने हृदय में जो अनुभव
ही कहते थे। वे जो कहते थे वही आचरते थे। वे जो आचरते थे वही उनके
तियों का मार्ग होता था। इस सामंजस्य की अभिव्यक्ति ही उनकी प्रकृति,
और वेशभूषा की सरलता थी।

महत् आदर्शवादी थे। लेकिन उनकी आदर्शवादिता उनकी व्यवहारवादिता
थी। वे व्यावहारिकता-विहीन सिद्धान्तों के पालक नहीं थे। वे अनावृत
स्वाभाविक रूप में ग्रहण करते थे। वे जीवन की अनावृत यथार्थता के

नात्मक प्रतिमा उनकी चेरी थी जो उनकी अविराम श्रमशीलता से अपनी
ह पाती थी। उनकी कर्मरतता न क्लान्त होती थी, न विश्राम पाना चाहती
रण था, उन्होंने साहित्य की प्रत्येक विधा को समृद्ध किया।

ारम्भिक जीवन में उर्दू-फारसी में लिखते थे। उनकी स्नेहमयी मनोवृत्ति
ति में रमती थी। लेकिन इसका आधार न कट्टरपन था, न धर्मान्धता। वे
ाष्ट्रवादी हिन्दू थे और मानवता पर आधारित राष्ट्रीयता के पुजारी थे।
त्ति से उन्हें अरुचि थी। उनका विश्वास था कि धनियों का सितारा
रीबों का सितारा उदित होगा। वे सुख-सुविधा को जैवनिक आनन्द का

आधार नहीं मानते थे । उनकी मान्यता थी कि मानसिक आनन्द जैवनिक सुख-सुविधा का सर्जक है । वे अर्थ-विरागी नहीं थे । वे जीवन के लिए अर्थ-संचय की अनिवार्यता की महत्ता स्वीकारते थे । लेकिन इसके लिए उन्होंने अपनी कला को व्यापारिक रूप नहीं दिया । उनकी कलम कंचन के लिए नहीं चली । कंचन ने उनकी कलम नहीं खरीदी । प्रलोभन ने उन्हें कभी आदर्श-च्युत नहीं किया । उन्होंने व्यापार का मार्ग पकड़ा । इस मार्ग में यदि उन्होंने आदर्शवाद का दामन छोड़ दिया होता तो कई हजार रुपयों का ऋण छोड़कर वे स्वर्गवासी न हुए होते । उन्होंने हिन्दी पाठकों को जासूसी और भूतनाथी इन्द्रलोक से बाहर निकालकर सन्मार्ग की ओर बढ़ने को प्रेरित किया । 'जागरण' द्वारा उन्होंने जनता के हृदय में जागरण का सन्देश भरा लेकिन जनता ने उन्हें सार्वजनिक रूप में सम्मानित नहीं किया । वे इस सम्मान के बुभुक्षित भी नहीं थे । उनका जीवन स्वावलम्बन का अद्भुत मूर्तरूप था । वे प्रेरणाओं के स्रोत थे ।

उन्होंने चापलूसी का ककहरा तक नहीं सीखा था । वे चलते-पुर्जेपन से कोसों दूर रहते थे । उन्होंने अनेक प्रकार की आपदाओं से युद्ध किया था । जब तक उनकी साँसें चल रही थीं, ग़रीबी ने उनका दामन नहीं छोड़ा । उन्होंने अपने हृदय के रक्त से साहित्य लिखा था । स्वास्थ्य ने उन्हें कभी सहयोग नहीं दिया । लेकिन उन्होंने अपनी जिन्दादिली का दामन नहीं छोड़ा । कल्पनाशीलता उनकी चेरी थी, सहृदयता उनकी सहचरी थी और अनुभूतिप्रवणता उनकी अनुचरी थी ।

उन्होंने गांधीजी के राजनैतिक आन्दोलनों में सक्रिय हिस्सा नहीं लिया लेकिन उनके जीवन-दर्शन पर गांधीवादी विचारधारा की छाप स्पष्ट रूप में परिलक्षित होती है । गांधीजी ने अपने जीवन के अन्तिम काल में कहा था—"अगर आप लोग सच्चे भारत के दर्शन करना चाहते हैं तो वे आपको कलकत्ता, बम्बई, दिल्ली आदि शहरों में नहीं हो सकते । उसके लिए तो आपको इस देश के देहात में जाना चाहिए ।" उस समय प्रेमचन्द जीवित नहीं थे लेकिन उन्होंने यह जीवन-दृष्टि पूर्व ही पा ली थी । यही कारण है, उन्होंने अपने साहित्य में गाँवों का ही चित्रण किया था । उनके साहित्य में ग्रामीण ज़िन्दगी जिस स्वाभाविक रूप में चित्रित हुई है, उस रूप में आज तक किसी साहित्यकार के साहित्य में चित्रित नहीं हुई, यह अतिशयोक्ति नहीं, हक़ीक़त है । उन्होंने उपन्यासों की बजाय कहानियों में अधिक कामयाबी हासिल की थी । वे आधुनिक कहानीकारों में सर्वश्रेष्ठ हैं । विदेशी भाषाओं में भी सर्वाधिक रूप में उनका साहित्य रूपान्तरित हुआ है । वस्तुतः उनका साहित्य निर्धन भारत का वास्तविक चित्र है ।

उनके प्रारम्भिक उपन्यासों में प्रेमा, रूठी रानी, हम खुर्मा व हम सवाब, असरारे मुआबिद आदि विख्यात हैं । सन् १६१७ ई० के उपरान्त उन्होंने हिन्दी में लिखना आरम्भ किया । उनके हिन्दी उपन्यासों में 'गोदान', 'सेवा-सदन', 'प्रेमाश्रम' आदि प्रसिद्ध हैं । उन्होंने मासिक पत्रिका 'माधुरी' (लखनऊ) का भी सम्पादन किया था । इस सम्पादन-काल में उनके अनेक कहानी-संग्रह प्रकाशित हुए—प्रेम पंचमी,

प्रेम द्वादशी और सर्वश्रेष्ठ उपन्यास 'रंगभूमि' । उर्दू से रूपान्तरित होकर उनकी अनेक कृतियाँ प्रकाशित हुई हैं—मंगलाचरण (चार उपन्यास), गुप्त दान (दो भाग), विविध प्रसंग (तीन खण्ड), चिट्ठी-पत्री (दो खण्ड) आदि । सेठ श्री गोविन्ददास ने उनके बारे में सही लिखा है—"मुन्शी प्रेमचन्द जी ने अपनी मृत्यु के कुछ समय पूर्व अपने एक मित्र को अंग्रेजी में लिखा था—"I cannot imagine a great man rolling in wealth" अर्थात् "मैं किसी ऐसे बड़े आदमी की कल्पना नहीं कर सकता जो धनवान् हो।"

इस एक वाक्य में प्रेमचन्द जी की समस्त भावनाएँ उसी प्रकार आ जाती हैं जिस प्रकार वेद-वेदान्तों के छोटे-छोटे सूत्रों में न जाने क्या-क्या भरा रहता है । आगे चलकर इसी पत्र में उन्होंने एक वाक्य और लिखा—"With a handsome Credit-balance I might have been just as others are." अर्थात् "मेरे पास भी यदि धन होता तो मैं भी शायद दूसरों के समान ही हो जाता।" अपने प्रथम सूत्र के कारण की भी इस वाक्य में उन्होंने व्याख्या कर दी । बाइबिल में भी एक जगह कहा गया है कि "चाहे सुई के छेद में से ऊँट निकल जाय, पर किसी धनवान् का स्वर्गीय राज्य में प्रवेश असम्भव है ।" मैंने स्वयं इस बात को देखा ही नहीं, अनुभव भी किया है ।

प्रेमचन्द जी का नाम धनपतराय था । इसी भावना के कारण शायद उन्होंने अपना नाम भी बदल दिया और जो नया नाम उन्होंने ग्रहण किया उसके अनुरूप ही उनका स्वभाव था—प्रेम से ओत-प्रोत ।

वस्तुतः वे साहित्यकार के रूप में अमर हैं । वे अद्भुत जीवन-शिल्पी थे और मोहक शैली के सर्जक थे ।

श्री जयशंकर 'प्रसाद'

श्री जयशंकर 'प्रसाद' को मैंने कब पहले-पहल देखा, कब हम लोग एक-दूसरे के साथ सौहार्द-बन्धन में बँधे—इसकी मुझे याद नहीं। एक सुदूर अतीत जिसमें न समय का बन्धन है, न स्थान का, उसी अतीत में शायद हम दोनों मिले थे और ऐसे मिले थे कि प्रतीत होता था मानो हम दोनों कब के परिचित हों और कब की घनिष्ठता हम दोनों में रही हो। तब से बराबर उनसे मेरी भेंट होती ही रही।

उनके घर में मैं बराबर जाया करता था और वे भी कभी-कभी मेरे डेरे में आया करते थे, वहीं से हम दोनों उनकी दूकान तक जाते थे। एक दिन मैं उनके घर में बैठकर उनसे बातें कर रहा था। उसी समय उनका लड़का आया और 'आँसू' पुस्तक खरीदने के लिए चार आने माँगे। वह पुस्तक उस लड़के के स्कूल में पढ़ायी जाती थी। प्रसादजी ने अपने लड़के को चवन्नी दी। लड़का चला गया। तब उन्होंने करुण भाव से भरकर कहा— 'सुहृद् जी, देखा ? अपनी लिखी हुई पुस्तक भी मुझे खरीदनी पड़ती है।' मैं उनकी विवशता से मर्माहत हो गया। इसके बाद बहुत देर तक बातें होती रहीं।

एक बार बनारस में 'क्वीन्स कॉलिज' में कवि-सम्मेलन था। मैं प्रसादजी के घर में था और उनसे बातें कर रहा था। उसी समय कुछ लोग उनके पास आये और कवि-सम्मेलन का अध्यक्ष होने के लिए आग्रह करने लगे। वे उन्हें बराबर कहते रहे कि किसी दूसरे व्यक्ति को अध्यक्ष बनाइये। इसपर एक सज्जन ने उन्हें कहा—'आप ही किसी का नाम बताइये।' उन्होंने बिना कुछ सोचे-विचारे कहा—'सुहृद् जी को बनाइये।' आग्रह करनेवालों ने उन्हें कहा—'हम लोग आपके आदेश का पालन अवश्य करेंगे लेकिन आपको कवि सम्मेलन में पधारना होगा।' प्रसादजी ने अपनी स्वीकृति दे दी।

जाड़े का दिन था। मोटर लेकर श्री धर्मवीर जी (अब प्रोफेसर) आये। मैं प्रसादजी के घर गया और उनको साथ लिया तथा कवि-सम्मेलन में पहुँचा। वहाँ श्री जनार्दनप्रसाद झा 'द्विज', श्री विनोदशंकर व्यास, श्री 'सुधांशु' जी, श्री सूर्य-नारायण ठाकुर, श्री सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला', पण्डित वाचस्पति पाठक आदि बहुत लोग आये हुए थे। कवि-सम्मेलन आरम्भ हुआ। सभी कवि कविता-पाठ कर चुके, लेकिन प्रसादजी गम्भीर मुद्रा में चुपचाप बैठे रहे। भीड़ से आवाज आई—

अध्यक्ष महोदय, प्रसादजी से आग्रह करें एक कविता सुनाने का।' मैं जानता था कि प्रसादजी सम्मेलन में कविता नहीं सुनाते हैं। मैंने हँसते हुए कहा—'जिन लोगों की प्रसादजी से कविता सुनने की इच्छा हो वे मेरे साथ उनके घर में चलेंगे—मैं कविता सुनवा दूंगा और जलपान भी होगा।'

मेरी बातें सुनकर सभी हँसने लगे। सम्मेलन के बाद जब हम लोग चले तब रास्ते में प्रसादजी ने कहा—'सुहृद जी, आप ही थे जो आसानी से मैं बच गया।' उन्हें घर पहुँचाकर मैं भी डेरा चला गया।

•

बनारस के कुछ लोग नाटक खेलना चाहते थे। उन्होंने प्रसादजी द्वारा लिखा 'चन्द्रगुप्त' नाटक चुना और 'नीची बाग'-वाले सिनेमा-हॉल में उसे अभिनीत करने की तिथि निश्चित की। प्रसादजी ने मुझे कहा—'अमुक तिथि को नीची बाग वाले सिनेमा-हॉल में यहाँवाले नाटक खेलेंगे, चलियेगा।' दो दिनों के उपरान्त पण्डित वाचस्पति पाठक ने मुद्रित निमंत्रण-पत्र भी मुझे दिया। मैं निश्चित समय से कुछ पूर्व ही पहुँचा। प्रसादजी अगली पंक्ति में सोफासेट पर आसीन थे। मुझे देखते ही उन्होंने इशारा किया। मैं उनके पास गया और उनकी बगल में बैठ गया। अभिनय की समाप्ति के उपरान्त हम लोग साथ चले। प्रसादजी अपने घर चले गये और मैं अपने डेरा चला आया।

•

'सुहृद्' नामक अभिनन्दन-ग्रंथ में प्रो० उमेश चन्द्र 'मधुकर', एम० ए०, साहित्यरत्न ने लिखा है—"मुंशी प्रेमचन्द का मुझपर स्नेह था और मैं उनके यहाँ सरस्वती प्रेस में आने-जाने लगा था, किन्तु श्री जयशंकर 'प्रसाद' के यहाँ मेरी दाल नहीं गलती थी। एक तो वे मौनप्रिय, एकान्तप्रिय, जन-भीरु, अध्ययनशील व्यक्ति; दूसरे अकारण और असहाय मैं कैसे पहुँचता उन तक! एक दिन गुरुवर प्रो० मनोरंजनप्रसादसिंह के क्वार्टर में सुहृद् जी मिल गये। वहाँ प्रसंगवश मैंने 'प्रसाद' जी के सम्बन्ध में अपनी विवशता प्रकट की। बस; उसी शाम को वहाँ से उठने के बाद ही 'सुहृद्' जी मुझे हिन्दू यूनिवर्सिटी से शहर की ओर ले चले और प्रसादजी के शान्त-स्निग्ध घर पर पहुँच गये। मैं प्रसादजी की इनसे आत्मीयता देखकर बड़ा प्रसन्न हुआ। मुझे आज तक प्रसादजी की वह गम्भीर, किन्तु प्रसन्न-मुद्रा याद है जिसका दर्शन मैंने उन्हें अपनी एक रचना सुनाने के बाद किया था। ऐसा लगता था, जैसे कोई माली अपने लगाये हुए पौधों को पनपते देखकर सन्तोष की साँस ले रहा हो, खिल-खिल पड़ता हो, किन्तु उनके भविष्य की चिन्ता में भी मग्न हो जाया करता हो। पीछे तो प्रसादजी के यहाँ मैं ढीठ हो गया लेकिन उनके प्रथम दर्शन और परिचय का श्रेय सुहृद्जी को ही है।"

प्रसादजी श्वेत मुलमल, इत्र, सुभोजन और फूलमाला के शौकीन थे। इत्रों के बारे में उनकी जानकारी अद्भुत थी। मैं उनकी दूकान पर बराबर बैठा करता था। जब वे तेल-फुलेल की बातें बतलाते थे तब ऐसा प्रतीत होता था मानो वे

छायावाद-युग के उन्नायक नहीं हैं वरन् मनोज के व्यापारी हैं। वे बाह्य रूप में गम्भीर दिखते थे किन्तु आन्तरिक रूप में स्निग्ध, कोमल, मधुर और मोहक थे।

उनकी वाणी की अपेक्षा उनका मौन अधिक मुखर था। वस्तुतः वे अल्पभाषी थे और मधुरभाषी भी। वे आत्म-गोपन की कला में पूर्ण निष्णात थे। इसका अर्थ यह नहीं है कि आत्म-ज्ञापन की कलात्मक शक्ति से वे वंचित थे। वे चिर-तरुण थे। उनके आनन-मण्डल पर कान्त-कमनीयता थी, मोहकता थी, आह्लाद था और उनके अधरों पर मुस्कान थिरकती रहती थी। इसलिए प्रथम भेंट में कोई यह समझने को बाध्य हो सकता था कि उनके जीवन में किसी प्रकार का अभाव नहीं था; किन्तु हकीकत यह नहीं थी। उनकी विभूति उनकी वेदना थी। यह वेदना हृदय को द्रवीभूत करती थी और न अघानेवाली मादकता की भी सृष्टि करती थी। यही कारण था, संकट उनका सर्वस्व था, सहिष्णुता ही सुविधा थी, शान्ति ही सुख थी और उनका करुण संगीत रुलाता था और उल्लसित भी करता था।

सार्वजनिक दायित्व से वे कतराते थे। इसलिए किसी सभा या संस्था के संचालन की शक्तिमत्ता का उन्होंने परिचय नहीं दिया। लेकिन उनके हर-एक व्यवहार से उनकी निःस्वार्थता एवं निःस्पृह प्रेमलता की झाँकी मिलती थी। वे दूसरों से लेने के आकांक्षी नहीं थे, वरन् दूसरों को देने में उन्हें हार्दिक सन्तोष की अनुभूति होती थी।

उनमें साहित्यिकता और व्यावसायिकता का अपूर्व मणिकांचन-संयोग था। यही कारण था, उनकी काव्य-कला उनके व्यवहार-ज्ञान से मैत्री निभाती थी और उनकी वाणिज्य-कला उनकी सहृदयता पर आँच नहीं आने देती थी। उनमें वाणिज्य-बुद्धि का प्राचुर्य था। इस प्राचुर्य ने उनकी साहित्य-कला को अर्थलाभ का माध्यम नहीं बनने दिया। प्रकारान्तर से यों कहा जा सकता है कि वे व्यावसायिक थे और विभव-विरागी भी। उनमें अर्थलिप्सा न थी।

वे विवाद, विग्रह, विद्वेष, कोलाहल, छल-कपट आदि से कोसों दूर रहते थे। वे अपनी क्षति-पूर्ति के लिए दूसरों को कष्ट नहीं देते थे। वे सरल जीवन के आराधी थे। वे शान्ति और संयम का मार्गावलम्बन करते थे। वे सदा सपनों की दुनिया में नहीं विचरते थे वरन् अपनी रोटी-दाल का प्रबन्ध भी स्वयं करते थे। वे जीवन के प्रथम कदम पर सतर्कता और सावधानता बरतते थे। वे ऐसा कोई कार्य नहीं करते थे जिसे व्यावहारिक बुद्धि हेय समझती हो। इस अर्थ में वे स्वप्न-द्रष्टा थे और व्यवहार-कुशल भी।

वे मैत्री भाव पर आधारित सहृदयतापूर्ण और सद्भावनामयी आलोचना प्रेम-पूर्वक सुनते थे और मित्रों के सन्तोष के लिए चेष्टा भी करते थे। लेकिन यदि आलोचना अभद्रता, अनीति और असद्भावना की लीक पकड़ती थी तो वे उस लीक से पृथक् हो जाते थे। वक्र मनोवृत्तियों से उन्हें घृणा थी।

वे न पर-निन्दक थे न आत्म-श्लाघी। उन्हें अभिमान छू तक नहीं गया था। वे न अपनी निन्दा से क्षुब्ध होते थे, न अपनी प्रशंसा से प्रसन्न। वे अपनी डींग नहीं

। वे जीवन की हर स्थिति में निर्लिप्तता बरतते थे। उनका हृदय उदार था।
क या मानसिक माधुर्य के पुजारी थे।

संस्कृत और ब्रजभाषा की वे कविताएँ, जिनमें वाणी की वक्रता थी और
ता, सुनाते हुए वे अघाते नहीं थे। कालिदास, देव, सेनापति और पद्माकर
य कवि थे।

उनकी उपलब्ध साहित्यिक कृतियाँ ये हैं—कामायनी, आँसू, लहर, झरना,
का महत्त्व, प्रेम-पथिक, करुणालय, कानन-कुसुम, प्रसाद-संगीत (काव्य),
, चन्द्रगुप्त, कामना, जनमेजय का नागयज्ञ, विशाख (नाटक), कंकाल,
उपन्यास), प्रतिध्वनि, इन्द्रजाल (कहानी) आदि।

पण्डित सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला'

पंडित सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' का नाम मैं 'मतवाला' के समय से जानता था। उनसे बनारस मे १९२७ ई० में पण्डित वाचस्पति पाठक ने परिचय कराया था। 'निराला' जी जब बनारस जाते थे तब दुर्गाकुण्ड के पास वाले पाठकजी के मकान में ठहरते थे। पाठकजी की कृपा से मेरी घनिष्ठता 'निराला' जी के साथ बढ़ी। पाठकजी 'सुधांशु' जी के सहपाठी हैं। इसलिए जब सुधांशुजी बनारस में थे तब पाठकजी से उनकी खूब घनिष्ठता थी। पाठकजी बहुत खुशदिल और दोस्तपरस्त व्यक्ति हैं। उन दिनों मैं अधिकतर बनारस में रहता था। एक रोज़ 'निराला' जी बनारस आए हुए थे और पाठकजी के यहाँ ठहरे हुए थे। मैं उनसे मिलने को पाठकजी के मकान में गया। बहुत देर तक उनसे बातें हुई। उन दिनों श्री गोपालसिंह नेपाली औपन्यासिक सम्राट् प्रेमचन्द जी के सरस्वती प्रेस, बनारस में काम करते थे। निरालाजी ने मुझे कहा—"आप बड़े मौके पर आ गये। कल चार बजे यहाँ आ जाइयेगा। नेपालीजी को भी बुलाया है। हम लोग हिन्दू विश्वविद्यालय में फुटबाल खेलने चलेंगे। वहाँ से सुधांशुजी के यहाँ चलेंगे।" मैं उनसे मिलने के बाद बाजार की ओर गया। दूसरे दिन मैं समय पर 'सुधांशु' जी के यहाँ पहुँच गया। हम लोग पाँच बजे शाम खेल के मैदान में पहुँच गए। निरालाजी, नेपालीजी आदि भी आ गये। विष्णुदेव बाबू को मैंने खबर दी। वे भी आ गये। करीब पैंतालीस मिनट तक हम लोग गेंद खेलते रहे। खेल के बाद हम लोग सुधांशुजी के कमरे में गये। उन्होंने सब के लिए जलपान की व्यवस्था की।

'निराला' जी के शरीर को देखने पर हर आदमी यही समझता था कि वे बहुत बड़े पहलवान थे। उनकी आकृति और प्रकृति में बैसवाड़े का ठेठ किसानपन था और बंगाल की कवित्वमयी भावुकता भी। बैसवाड़े के किसानों की धर्मगत रूढ़िप्रियता के लिए 'निराला' जी के हृदय मे स्थान तो था लेकिन वे रूढ़िवाद के भंजक थे। वे प्रकृतितः लापरवाह थे। उनके मस्तक पर रूखे-सूखे लम्बे-लम्बे बाल थे। वे वस्त्रों के प्रति भी लापरवाही बरतते थे। उनके शरीर पर मैले-कुचैले कपड़े भी दिखते थे। उनके पैरों पर फटी-पुरानी चप्पलें रहती थीं या वे नंगे पाँव भी चलते थे। उनकी इस वेशभूषा में कोई उन्हें दरिद्र या पागल भी समझने को बाध्य हो सकता था। लेकिन उन-

 . . क्षणिक होता था। वे क्षणभर में साज-सिंगार से लैस हो जाते थे, जवानी

की मस्ती में झूमते हुए चलते थे और अपनी सरसता से सबको सिक्त कर देते थे। किसी शायर ने ये पंक्तियाँ शायद उन्हीं के लिए लिखी थी—

"लीक लीक गाड़ी चलै,
लीकै चलै कपूत,
लीक छाड़ि तीनों चलैं
शायर सिंह, सपूत।"

वस्तुतः निरालाजी हिन्दी के सपूत थे। वे न जीवन में दूसरों की लीक पर चलते थे, न साहित्य में। वे अनासक्ति की मूर्ति थे। उनकी प्रत्येक अभिव्यक्ति में निस्संगता थी। इस निस्संगता ने उनके करुण-विधुर जीवन को अश्रु-विगलित होने से बचाया था। उनमें आत्मार्पण की अपूर्व क्षमता थी। उनका हृदय पौरुषमय था जो आसक्ति-जनित अबलता की अधीनता कबूल नहीं करता था। वे अपनी स्वतंत्र सत्ता का बोध-प्रसार द्वन्द्वरहित होकर करते थे। यही उनकी विशिष्टता का मूल था।

वे औरों के दृष्टिकोण की कद्र करते थे, लेकिन करते थे वे अपने मन की। वे किसी वस्तु को इसलिए पसन्द नहीं करते थे कि वह वस्तु औरों की दृष्टि में प्रशंसनीय थी। वे किसी वस्तु को इसलिए हेय या त्याज्य नहीं मानते थे चूँकि वह वस्तु दूसरों की दृष्टि में हेय या त्याज्य थी। वे अपने मन की सुनते थे। उनका मन वस्तुतः विद्रोही था। यही कारण था, परम्परा या लोकमत के साथ उनका सामञ्जस्य नहीं था। उनके मानवीय मौलिक रूप का निकष न उनकी वेशभूषा थी, न उनका वार्तालाप, न उनका आचार-विचार, न उनका व्यवहार। इसलिए वेशभूषा, वार्तालाप, आचार-विचार और व्यवहार को व्यक्तित्व के निकष के रूप में ग्रहण करनेवालों के लिए उनका व्यक्तित्व एक चुनौती था।

'निराला' जी विभिन्न रूपों में प्रकट होते थे और लोगों में विभिन्न धारणाएँ प्रकट करते थे, लेकिन उनके 'महत्' की एकरूपता अनावृत नहीं हो पाती थी। यह सहज रूप में कहना कठिन था कि उनकी आत्माभिव्यक्ति अपने वास्तविक रूप में 'जुही की कली' में थी या 'कुकुरमुत्ता' में।

वे हिन्दी-साहित्याकाश में उच्छृंखल धूमकेतु की तरह उदित हुए थे। इसलिए जिन लोगों में काव्य-परम्परागत रूढ़ि-प्रियता थी वे उनके आलोक से स्तंभित रह गए थे। यही कारण था, 'निराला' जी के विपक्ष में जितना आन्दोलन चला उतना आन्दोलन उनके किसी समकालीन साहित्यकार के विपक्ष में नहीं चला। लेकिन विरोध की आँधी ने उनकी काव्य-प्रतिभा-प्रदीपिका को निर्वापित नहीं किया। यह उनकी सबसे बड़ी विजय थी।

उन्होंने कविता को छन्द-बन्धन से मुक्त किया। इस दृष्टि से उनकी 'जुही की कली' हिन्दी की प्रथम छन्दमुक्त कविता थी। उन्होंने काव्य-कला के भावानुभूतिक क्षेत्र की सीमाएँ बदल दीं और दिशाएँ भी। वे अपने युग के प्रतिनिधि कलाकार थे। उनके स्वरों में जलद-गांभीर्य था। यह जलद-गांभीर्य उनके रूप को और भी आकर्षक बनाता था। उनकी अभिव्यक्ति-कला में समस्त विविधताएँ सन्निविष्ट थीं। वे अनुभूति की

मादकता में स्वयं ही विभोर नहीं होते थे सबको विभोर बना डालते थे। उनकी स्वर-लहरी में मधुरता थी और ओज भी। उनकी स्वर-लहरी का आरोह-अवरोह अनुपम था। यह इस बात का प्रमाण है कि शक्तिशाली हृदय वाग्मिता के अमर स्रोत का उद्भावक है।

जिस रूप में उनका शरीर विशाल था उसी रूप में उनका हृदय भी। वहाँ प्रौढ़ि और दृढ़ता का उत्थान आवेग प्रवाहित होता था। यही कारण था, वे किसी भी प्रहार से निष्प्रभ नहीं होते थे, न निरुत्तर होते थे; वरन् सटीक और सबल उत्तर से अपनी क्षमता और तत्परता का अपूर्व परिचय देते थे। वे सत्य की चोट से मूर्च्छित नहीं होते थे। वे सत्य की चोट से भावुकतावश असहिष्णु नहीं होते थे। उनकी अजेय शक्तिमत्ता का मूल उनकी सचाई और निर्भीकता में था।

वे जिस गति से काव्य-क्षेत्र में विचरते थे उसी गति से गद्य-क्षेत्र में। उन्होंने अपनी प्रगतिशीलता का परिचय दोनों क्षेत्रों में दिया। उनकी प्रतिभा बहुमुखी थी। अधिवास, अनामिका, परिमल, गीतिका, तुलसीदास, कुकुरमुत्ता, अणिमा, नए पत्ते, बेला, अर्चना, आराधना, गीत-कुंज, कवि श्री आगिमा आदि उनकी काव्य-पुस्तकें हैं; प्रबन्ध-पद्म, प्रबन्ध प्रतिमा, पन्त और पल्लव, चाबुक, चयन आदि निबन्ध-पुस्तक हैं; अप्सरा, अलका, लिली, निरुपमा, प्रभावती, कुल्लीभाट, चमेली, सुकुल की बीबी, चतुरी चमार, चोरों की पकड़, देवी, काले कारनामे आदि कथा-उपन्यास-पुस्तकें हैं। उन्होंने समालोचना आदि के क्षेत्र में भी स्तुत्य कार्य किये। उन्होंने 'रामचरितमानस' के विनय काण्ड का रूपान्तर खड़ी बोली में किया था। उन्होंने रामकृष्णवचनामृत (तीन खंडों में) नामक जीवनी-ग्रंथ लिखा था। उनका पार्थिव शरीर नश्वर था, लेकिन वे अपने यश शरीर से हिन्दी के कवि, कथाकार, निबन्धकार, पत्रकार, उपन्यासकार और आलोचक के रूप में अमर रहेंगे।

जो भी उनके सम्पर्क में आया उनके शील-सौजन्य का लोहा मान गया। उनकी सहृदयता और उदारता अतुलनीय थी। वे अतिथि-सत्कारपरायणता की मूर्ति थे। वे निःस्पृह त्यागी थे। उनकी बाह्य-ज्ञान-शून्यता की वजह थी उनकी चिन्तनगत लीनता। यह उनकी जन्मजात प्रकृति थी। यही कारण था, वे कभी-कभी सुनकर भी नहीं सुनते थे एवं देखकर भी नहीं देखते थे।

वे जब तक जीवित रहे, स्वार्थी शोषकों द्वारा शोषित होते रहे। ऐसी बात नहीं थी कि उनमें आत्म-बोध की न्यूनता थी। वे शील की मर्यादा का उल्लंघन ही नहीं कर पाते थे। वे दुराग्रही नहीं थे। वे अपने हृदय की बात अनसुनी नहीं करते थे।

मित्रों और स्नेहियों के प्रति उनके हृदय में उत्कंठा थी। उनके बारे में वे अक्सर पूछताछ करते थे और अपनी शक्ति के अनुसार उनके कष्टों को दूर करने में प्रसन्नता का अनुभव करते थे। वे दीन-दुखियों के लिए कल्पतरु के समान थे। वे कामिनी-कंचन से विरक्त थे। वे महापुरुष थे।

वे भाषा के असाधारण पारखी थे। वे 'मतवाला' में गरजसिंह वर्मा के नाम से आलोचनाएँ लिखते थे। वे भाषा की प्रकृति, शैली और शुद्धता की परख पैनी दृष्टि

से करते थे। उनमे विलक्षण सूक्ष्मदर्शिता थी। पण्डित जगन्नाथ प्रसाद चतुर्वेदी जैसे भाषादक्ष उनका लोहा मानते थे।

निरालाजी राग-द्वेष से प्रेरित होकर किसी पर कीचड नही उछालते थे। वे हिन्दी के स्वरूप को कलकरहित बनाना चाहते थे। वे भाषागत अराजकता पसन्द नहीं करते थे। वे इस विषय में किसी से उलझना भी नापसन्द करते थे। यही कारण था, वे 'मतवाला' में कल्पित नाम से लेखमाला लिखते थे।

उनके विचारो मे क्रान्तिकारिता थी। उन्होने साहित्य में क्रान्ति का बीज वपन किया और उसकी सार्थकता सिद्ध की। वे देवोपम मानव थे। उनका हृदय

श्री बालकृष्ण शर्मा 'नवीन'

'नवीन' जी को मैं कब से जानता हूँ, मैं स्मृति के पंखों पर उड़कर भी किसी काल या तिथि को पकड़ नहीं पाता, लेकिन इतना स्मृत है कि वह चाहे जो काल या तिथि रही हो उस काल या तिथि में भी मैंने यही अनुभव किया था कि मैं उन्हें वर्षों से जानता हूँ। इसका कारण यह है कि उनके व्यक्तित्व में आत्मीयता का प्राचुर्य था। उस प्राचुर्य में विचित्र आकर्षण-शक्ति थी। इस दृष्टि से वे अतुलनीय थे। यही कारण था, जो भी उनसे प्रथम बार मिलता था, उसे लगता था कि वह उनसे चिर-परिचित है।

उन्होंने सहज साहित्यिक प्रतिमा पायी थी। उनके इस रूप की विशिष्टता उनकी सभी कविताओं, लेखों, भाषणों और वार्तालापों में परिलक्षित होती है। वे हृदय से कोमल थे। उनकी हार्दिक कोमलता में प्रेम की तड़प थी। उनका वक्षस्थल सुदृढ़ था। इस सुदृढ़ता में कर्तव्य की पुकार थी। सक्षेप में वे कोमलता और सुदृढ़ता के समन्वित रूप थे।

उनके कवि के व्यक्तित्व अनेक थे। जब वे कलुष-नाशिनी ज्वालाशक्ति की उपासना करते थे तब वे सैनिक बन जाते थे। जब वे कारुण्यमयी अश्रु-धारा के प्रवाह में बहते थे तब वे वहाँ पहुँच जाते थे जहाँ उनकी ज्वाला सो जाती थी। उनकी आत्माभिव्यक्ति का यह रूप-परिवर्तन उनके जीवन के अनुरूप था। वस्तुत: जब वे जीवन का युद्ध लड़ते थे, वे एक सच्चे सैनिक का रूप धारण कर लेते थे। जब वे जीवनानुभूतियों की व्यंजना करते थे तब वे कवि हो जाते थे। उनके हाथों में बन्दूक भी थी और बाँसुरी भी। इसलिए उनकी कठोरता में भी सुन्दरता और मधुरता थी और सुन्दरता तथा मधुरता में भी कठोरता थी।

वे अपने दैनिक जीवन-क्रम में नियमबद्धता की चिन्ता नहीं करते थे। वे अपने प्रत्येक कार्य के प्रति निरपेक्ष थे। जब उनके मन में कार्य की धुन समाती थी तब वे अविराम रूप में काम करते जाते थे और खाने-पीने, सोने नहाने की सुधि भी खो बैठते थे। ऐसी आत्मलीनता थी उनमें कार्यों के प्रति। जब वे शय्या पर निद्रासीन होते थे तब आवश्यक कार्यों की भी परवाह नहीं करते थे—ऐसा था उनमें बेफिक्रीपन और ऐसी थी उनमें मस्ती। लेकिन इस बेफिक्रीपन या मस्ती की वजह से लोक-कल्याण के कार्य में कभी बाधा नहीं आयी। उनके कार्यों में अपूर्णता दृष्टिगत नहीं होती थी। इसकी वजह यह थी कि जब वे कार्यरत होते थे तब वे अपनी सभी चित्तवृत्तियों का निरोध कर

योगावस्था में पहुँच जाते थे। उनके कर्मयोग की महती सफलता थी—उनकी साधनागत अखण्डता। इस स्थिति में निःस्पृहता स्वाभाविक है, अस्वाभाविक नहीं। जो इस तथ्य से अवगत नहीं थे उनकी दृष्टि में 'नवीन' जी 'अल्हड़पन' की प्रतिमा थे। लेकिन उनकी दृष्टि में भी वे अनुत्तरदायी व्यक्ति नहीं थे।

वे अपने दायित्व का निर्वाह प्रत्येक क्षेत्र में करते थे; वह क्षेत्र चाहे मित्र-मण्डली का हो, चाहे विराट् लोक-सेवा का। वे अभावों की भिक्षा लेकर इस धरा-धाम पर अवतरित हुए थे। उन्होंने अभावों के साथ जीवन जीया था। लेकिन अपने जीवन के मार्ग में वे बाधाओं या व्यथाओं से व्याकुल नहीं होते थे। उनका पुरुषार्थ उन्हें अभावों को अभावों के रूप में ग्रहण करने नहीं देता था। उन्होंने सर्वदा प्रतिकूल परिस्थितियों से लोहा लिया था। उन्होंने इन स्थितियों में ही अपने व्यक्तित्व का विकास किया था। प्रतिकूल परिस्थितियों से वे समझौता नहीं कर सकते थे। संघर्ष में वे टूट सकते थे, पर झुकते नहीं थे। ऐसा अखण्ड आत्म-विश्वास उनमें था।

वे न दूसरों से घृणा करते थे न अपने से। वस्तुतः वे पर-प्रेमी थे और आत्म-प्रेमी भी। वे सम्मान के भूखे न थे, किन्तु उपेक्षा उनके लिए असह्य थी। वे स्वयं कष्ट सह लेते थे किन्तु पर-कष्ट-निवारण में दत्तचित्त रहते थे। यह उनका जीवनोद्देश्य था।

वे साहित्यकारों की मण्डली में साहित्य-साधक थे, राजनीतिज्ञों की मण्डली में वे ज्ञानी नीतिज्ञ थे और सामाजिक कार्यकर्त्ताओं के दल में वे कुशल-कर्मठ सहयोगी थे। उनमें अपूर्व साहित्य-साधना की ज्योति थी, ज्ञान का निर्मल आलोक था और चातुर्य-मयी कार्यशीलता का अक्षय प्रवाह था। देश के स्वतन्त्रता-संग्राम में उनका योग स्वर्णा-क्षरों में अंकित रहेगा।

वे सेवा-परायण थे और परोपकार-निरत भी। वे अमर शहीद गणेशशंकर विद्यार्थी के स्मृति-चिह्न थे। वे अपने गुरु के आदर्श पथ के अटल पथिक थे। वे पराधीन भारत में कांग्रेस के हर महाधिवेशन में जाते थे जहाँ उनसे मेरी भेंट होती थी और वे गले से गला मिलाकर मुझसे मिलते थे। मैं उनके मन की सरसता से आपाद-मस्तक सिक्त हो उठता था। सन् १९४० ई० में रामगढ़ में 'अखिल भारतवर्षीय कवि-सम्मेलन' कांग्रेस-अधिवेशन के अवसर पर हुआ था। इस सम्मेलन की अध्यक्षता उन्हें करनी थी। लेकिन जिस समय यह कार्य उन्हें करना था उस समय कांग्रेस कार्यकारिणी समिति की बैठक में गर्मागर्म बहस हो रही थी। 'नवीन' जी कवि-सम्मेलन मंच से उठे, मेरे पास आये और अपनी असमर्थता व्यक्त की। मैंने सम्मेलन की अध्यक्षता का भार पण्डित बुद्धिनाथ झा 'कैरव' जी को सौंपा। मैं भी कवि-सम्मेलन में शामिल नहीं हुआ।

जब 'नवीन' जी लोकसभा के सदस्य हुए, [illegible] पार [illegible] और दिल्ली में उनसे भेंट हो जाती थी। कालान्तर में वे राज्य-परिषद् [illegible] हुए। एक बार जब वे बहुत ज्यादा अस्वस्थ थे, मैं दिनकरजी के [illegible] उनसे मिलने गया। डॉक्टरों ने उन्हें बोलने-चालने से मना किया था। उनकी तबियत अच्छी नहीं थी। इतना होने पर भी उन्होंने हम लोगों से घंटों बातें कीं। [illegible]

राष्ट्रपीड़ा उनके काव्य की प्रेरणा थी। उनकी अभिव्यक्ति मार्मिक थी। इस क्षेत्र में वे छायावादी युग के श्रेष्ठ कवियों में अग्रगण्य थे। वे सभी वर्गों में प्रगतिशील थे।

उनका जन्म ८ दिसम्बर, १८९७ ई० में ग्वालियर (मध्य प्रदेश) के शुजालपुर नामक स्थान पर हुआ था। उनके पिता का नाम पंडित यमुनादास जी था। वे वैष्णव थे।

नवीनजी ने 'माधव कॉलेज' उज्जैन से एण्ट्रेंस परीक्षा पास की और कानपुर में विद्याध्ययन करने लगे। वे अमर शहीद विद्यार्थीजी के सम्पर्क में आये। वे विद्रोही हो उठे और असहयोग-आन्दोलन में सक्रिय भाग लेने लगे।

उन्होंने १९१७ ई० से लिखना आरम्भ किया। उन्होंने 'प्रताप' और 'प्रभा' का सम्पादन कुशलतापूर्वक किया था। भारतीय संविधान निर्माण में उनका महत्त्वपूर्ण योग था। वे अनेक वर्षों तक 'उत्तर प्रदेश हिन्दी साहित्य सम्मेलन' के अध्यक्ष रहे थे। वे २९ अप्रैल, १९६० ई० को स्वर्गवासी हुए। उनकी मुख्य रचनाएँ ये हैं—(१) उर्मिला (महाकाव्य), (२) प्राणार्पण (खण्ड काव्य), (३) काव्य-संकलन (गीतपरक रचनाएँ) (४) कुंकुम, (५) अपलक, (६) रश्मिरेखा, (७) क्वासि, (८) विनोबा-स्तवन, (९) हम विषपायी जनम के, आदि।

पण्डित श्री जनार्दन प्रसाद झा 'द्विज'

नाटा कद, श्याम वर्ण, प्रतिभा-प्रदीप्त आँखें, प्रशस्त ललाट, ये थे पण्डित श्री जनार्दन-प्रसाद झा 'द्विज'। वे छायावादी कवियों में अग्रगण्य थे। वे उपन्यासकार थे, कहानीकार थे और थे उद्‌भट वक्ता।

१९२७-२८ ई० की बात है। मैं उन दिनों अधिकतर बनारस में रहता था। एक रोज मैं और हिन्दी के उद्‌भट विद्वान् साहित्यकार पण्डित सीताराम चतुर्वेदी श्री बजरंगबली जी के यहाँ जा रहे थे। उनके प्रेस में मेरी 'प्रेम-मिलन' नामक खण्ड-काव्य पुस्तक छप रही थी। चतुर्वेदीजी के एक सम्बन्धी की किताब भी छप रही थी। हम लोग बातचीत करते हुए महान् चिन्तक, दार्शनिक और विचारक डॉ० भगवानदास जी के घर से सटे 'उत्तर सिगड़ा' पर जा रहे थे। श्री सूर्यनाथ टवरू के घर के सामने चतुर्वेदीजी ने मेरा परिचय द्विजजी को दिया। जिस समय चतुर्वेदीजी मेरा परिचय उन्हें दे रहे थे, वे मुस्कुरा रहे थे। मैं समझ गया कि वे मुझे अच्छी तरह से जानते और पहचानते हैं। लेकिन मैं गम्भीर होकर उनकी बातें सुन रहा था। कई दिनों के बाद बनारस के प्रसिद्ध वैद्य स्वर्गीय छन्नू जी के नाती श्री हनुमानप्रसाद शर्मा वैद्य शास्त्री के यहाँ मैं गया। उनके मकान में श्री शिवपूजन सहाय जी रहते थे। कुछ देर के उपरान्त द्विजजी भी आये। हम लोग बातें कर रहे थे कि पण्डित वाचस्पति-पाठक और सूर्यकान्त त्रिपाठी 'निराला' भी शिवजी को खोजते हुए आ गये। उन दिनों पण्डित वाचस्पति पाठक का बनारस में बोलबाला था। हर क्षेत्र में उनकी तूती बोलती थी। छोटे-बड़े सभी लोग उन्हें सम्मान की दृष्टि से देखते थे। शिवजी अपने घर से बाहर आये। हम लोग वहाँ दो-तीन घण्टों तक बैठे। पण्डित हनुमानप्रसाद शर्मा वैद्य शास्त्री के सहायक हम लोगों के सम्मान में लगे रहे। जलपान, पान आदि के दौर चलते रहे। फिर हम लोग अपने अपने निवास-स्थान पर गये।

द्विजजी की कविताएँ, कहानियाँ आदि पत्र-पत्रिकाओं में पढ़ने को मिल जाती थीं किन्तु भाषण सुनने का मौका नहीं मिलता था। वे अंग्रेजी और हिन्दी में धारा-प्रवाह भाषण करते थे, यह मैंने सुना था। डॉ० सुधांशुजी की वजह से उनसे मेरी घनिष्ठता बढ़ गयी।

१९३३ ई० की बात है। 'बिहार प्रान्तीय साहित्य सम्मेलन' का अधिवेशन भागलपुर में हुआ था। सभापति थे डॉ० काशीप्रसाद जायसवाल। श्री दिनकरजी ने

कवि-सम्मेलन में 'हिमालय' शीर्षक कविता पढ़ी जो उसी समय लिखी गयी थी। कविता का ओज दिनकरजी के कंठ का साहचर्य पाकर श्रोता-समाज पर छा गया। यह कविता जनता ने कवि से कितनी बार दुहराकर सुनी, इसकी गिनती नहीं। इस कविता पर आयावालजी ने 'दिनकर' को अपनी ओर से एक स्वर्ण-पदक देने की घोषणा की थी। 'दिनकर' का प्रकाश उसी दिन हिमालय की चोटी पर दिख पड़ा और तब से आज तक उसका सुदूर व्यापक और प्रखर होता गया। वहीं मैंने सम्मेलन को छपरे के लिए निमंत्रित किया। लेकिन उसके बाद बिहार पर प्रकृति का प्रकोप हुआ। संकटों का सिलसिला बँधा। बाढ़ आई। १५ जनवरी, १९३४ ई० को प्रलय-कारी भूकम्प हुआ। अधिवेशन टलता रहा। फरवरी, १९३५ ई० में मैं बेगूसराय से छपरा चला गया और वहाँ स्वागत-समिति का संगठन किया। सभापतित्व के लिए कई नाम आये। उन्हें पत्र लिखे गये लेकिन किसी ने स्वीकार नहीं किया। तब हम लोगों ने तय किया कि द्विजजी को सम्मेलन का और 'दिनकर' जी को कवि-सम्मेलन का सभापति बनाया जाय। स्वागत-समिति के अनुरोध को 'दिनकर' और 'द्विज' जी ने जो पत्र भेजे वे यह बता सकेंगे कि तब और आज के वातावरण में कितना अन्तर है। कहाँ अपनी ओर बढ़े हुए हाथों की माला को रोक देने की निःस्पृहता और कहाँ दूसरे के गले से उतारकर स्वयं माला पहनने की दुरभिसंधि! द्विजजी का पत्र यों है—

कामाक्षा,
बनारस कैंट,
१-४-३५

प्रिय सुहृद्,

बिहार प्रान्तीय हिन्दी साहित्य-सम्मेलन के इस अधिवेशन का सभापति तुम मुझे बनाना चाहते हो, यह तुम्हारा केवल स्नेह है। मैं नम्रतापूर्वक इतना तुमसे अवश्य निवेदन करना चाहता हूँ कि यह दायित्वपूर्ण पद मुझे समय के बहुत पहले दे रहे हो। अभी मैं इस योग्य नहीं हूँ। इस दायित्वपूर्ण पद के लिए किसी दूसरे व्यक्ति को खोजो। सुधांशुजी को बनाओ, अगर वे नहीं स्वीकार करें तो और लोगों को देखो। तुम्हारा यह स्नेह मुझे झुकाता जा रहा है। तुम्हारी कठिनाइयों को मैं समझ रहा हूँ लेकिन लाचारी है, क्षमा करना। तुम जहाँ कहीं भी रहते हो, अपने समयानुकूल वातावरण बना लेते हो। यह सब ईश्वरीय देन है। स्वागत-समिति के लोगों को तुम मेरी लाचारी तथा कठिनाई को समझा दो, तुम्हारे कहने पर वे लोग समझ जायेंगे और दूसरा सभापति ढूँढ़ निकालो। जब तुम स्वागत-मंत्री हो तो इतना मेरे लिए नहीं कर सकते हो कि मेरी बातों को मानकर किसी और दूसरे को सभापति बनाओ?

तुम्हारा,
जनार्दन प्रसाद झा 'द्विज'

'दिनकर' जी का पत्र यों है—

दलसिंग राय (दरभंगा)
२-४-३५

प्रिय कपिल,

कल रात में तुम्हारा तार मिला। 'द्विज' जी क्यों नहीं आ रहे हैं ? क्या उन्हें अपने प्रान्त से जरा भी प्रेम नहीं है ? अगर वह अवश्य हों तब तो कोई बात नहीं, यदि यों ही टाल-मटोल कर रहे हों तो उन्हें किसी तरह भी मत छोड़ो। उन्हें अवश्य सभापति बनाना।

मेरे सम्बन्ध में कई बातें हैं। मुझे सरकार से मंजूरी लेनी पड़ेगी। यह पहली बाधा है। दूसरे, तुम स्वागत-मंत्री हो और 'यह चुनाव' चुनाव के आरोप से मुक्त नहीं हो सकता। इसके सिवा मैं उम्र और साहित्य-सेवा के लिहाज से भी सभापति बनना नहीं चाहता। मुझे दो चार वर्ष तक कूदने-फाँदने दो। मेरे सभापतित्व में सम्मेलन को नियंत्रणों के अन्तर रहना पड़ेगा अथवा मुझपर ही विपत्ति आयगी। अगर तुम्हें कोई सभापति नहीं मिले तो तार दो; मैं सरकार से छुट्टी लेने की कोशिश करूँ, लेकिन मेरी हार्दिक प्रार्थना है कि मुझे छोड़ दो।

'द्विज' अगर तैयार नहीं हों तो वियोगीजी को लिखो, वह नहीं हों तो सुधांशु-जी या प्रोफेसर मनोरंजन को पकड़ो। आशा है, तुम लोग मेरी इस प्रार्थना पर विचार करोगे और मुझे दम्भी समझने की निष्ठुरता नहीं दिखलाओगे।

तुम्हारा,
'दिनकर'

उन दिनों देश-रत्न डॉ० राजेन्द्रप्रसाद पटने से छपरा आये थे और 'बिहार बैंक' में अपने बड़े भाई के साथ ठहरे हुए थे। हम लोग उनके पास गये और सारी बातें बतायीं। तब उन्होंने मुझे कहा—'जिन लोगों को सभापति बनाना चाहते हो उनके यहाँ स्वयं जाकर बातें करो। पत्र के द्वारा यह काम ठीक नहीं होगा।' 'दिनकर' जी को मैंने तार दे दिया और रात की गाड़ी से बनारस गया। 'द्विज' जी से बातें की। उन्होंने अपनी स्वीकृति दे दी। मैं दूसरी गाड़ी से लौटकर छपरा आया और राजेन्द्र-बाबू को सारी बातें बताईं। पहले अधिवेशन की तिथि ११-१२ अप्रैल थी किन्तु राजेन्द्र बाबू उस समय उपलब्ध नहीं हो सकते थे। उन तिथियों को उनका मद्रास का कार्यक्रम था। इसलिए उनकी सुविधा के अनुसार हम लोगों ने १३ अप्रैल की तिथि निश्चित की। 'दिनकर' जी ने भी अपनी स्वीकृति दी। फिर क्या था ! जोर-शोर से तैयारी शुरू हो गयी।

देशरत्न राजेन्द्र बाबू १२ अप्रैल की रात में ही छपरा आ गये। वे कुछ अस्वस्थ हो गये थे, इसलिए १३ अप्रैल को वे अधिवेशन में नहीं जा सके। 'द्विज' जी और 'दिनकर' जी १२ अप्रैल को छपरा पहुँचे। 'भगवान बाजार' स्टेशन से जुलूस निकला। दोनों सभापतियों के स्वागतार्थ बहुत बड़ी भीड़ थी। बाजे-गाजे के साथ उनका स्वागत हुआ। उनके निवास-स्थान तक जुलूस गया।

१३ अप्रैल की सन्ध्या में अधिवेशन शुरू हुआ। द्विजजी गलाभाव से भाषण नहीं लिख सके थे। इसलिए चार घण्टों तक वे मौखिक भाषण करते रहे। उनकी वक्तृत्व-कला ने लोगों को मंत्र-मुग्ध कर दिया। इतना सुनियोजित और धारा-प्रवाह भाषण तो लिखित भाषण भी नहीं हो सकता था। उनकी आवाज गूँज रही थी और लोग चकित-स्तब्ध उन विचार-धाराओं में खो गये थे जिन नूतन विचार-धाराओं का वे प्रतिपादन कर रहे थे। अधिवेशन में इतनी भारी भीड़ थी कि कहीं तिल रखने की जगह न थी। किसी को यह आशा न थी कि इतनी अधिक संख्या में जनता उमड़ पड़ेगी। जब तक भाषण होता रहा, लोग शान्तिपूर्वक भाषण सुनते रहे। बीच-बीच में कुछ लोग आकर मेरी पीठ ठोकते थे और मुझे बधाई दे जाते थे। सभी वर्गों के लोग आये थे। उन दिनों सारण के जिलाधीश रायबहादुर श्री एम० एन० राय थे। वे बंगला में कविताएँ भी लिखते थे। वे द्विजजी के भाषण को सुनकर मेरे पास आये और मुझे गले से लगा लिया। यह केवल इसलिए कि द्विजजी जैसे योग्य व्यक्ति को मैंने सभापति बनाया। जिले के सभी सरकारी पदाधिकारी मेरी स्वागत-समिति के सदस्य थे। जज थे श्री दास साहब आई० सी० एस० जो पटना हाई कोर्ट के मुख्य न्यायाधीश होकर कार्य-मुक्त हुए। सीवान के सब-डिवीजनल अफसर थे श्री पी० सी० चौधरी। ये भी हिन्दी के अनुरागी थे। इनकी माता हिन्दी की विदुषी लेखिका थीं। श्री पी० सी० चौधरी बहुत दिनों बाद मुंगेर में जज होकर आये थे। सबने दिल खोलकर मेरी सहायता की थी।

जब द्विजजी ने बनारस में रहना छोड़ दिया तब भागलपुर स्टेशन के पास होटल में रहने लगे। उन्होंने बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय से हिन्दी और अंग्रेजी में एम० ए० पास किया था। उन्हीं दिनों बेगूसराय बी० पी० एच० ई० स्कूल में प्रधाना-ध्यापक की जगह खाली हुई। उन्होंने इस पद के लिए आवेदन-पत्र दिया। वे इण्टरव्यू में भी आये। कार्यकारिणी सभा के सदस्यों की राय थी कि उनके-जैसे विद्वान् को इस पद पर नियुक्त किया जाय। किन्तु अध्यक्ष थे एम० डी० ओ० जो ऐंग्लो इण्डियन थे। उनके कान किसी सदस्य ने यह कहकर भर दिये कि द्विजजी असहयोगी हैं। इसलिए द्विजजी नियुक्त न हो सके। तब वे देवघर विद्यापीठ में रजिस्ट्रार होकर चले गये।

बहुत दिनों के बाद राजेन्द्र कॉलेज, छपरा में हिन्दी प्राध्यापक की जगह खाली हुई। द्विजजी ने मुझे पत्र लिखा। मैं छपरा गया और कॉलेज के सचिव श्री हरिहर-शरण जी तथा उमा बाबू से मिला। उन्हें सारी बातें कहीं। लोगों ने द्विजजी को छपरा कॉलेज में बुला लिया। बाद में वे औरंगाबाद कॉलेज के प्राचार्य-पद पर नियुक्त हुए।

जब वे हिन्दू विश्वविद्यालय में पढ़ते थे, कामाक्षा में रहते थे। वे कुछ दिनों तक सेण्ट्रल स्कूल के भी छात्र रहे। प्रधानाध्यापक बहुत छात्र-वत्सल थे। वे द्विजजी के गुणों से बहुत प्रभावित थे। इसी कारण स्कूल छोड़कर जाने पर भी उन्होंने उन्हें 'चौर महल' में एक अलग कमरा दे दिया था। जब मैं बनारस जाता था तब उनसे मिलने को उनके कमरे में जाता था।

वे अपना भोजन स्वयं बनाते थे। उनका भोजन स्वादिष्ट होता था। वे पाक-कला में निष्णात थे। वे अपने हाथों बनाये भोजन मुझे भी खिलाते थे। वे एक घण्टे में रसोई-कार्य समाप्त कर स्थान की धुलाई अपने हाथों से कर डालते थे। इस कार्य में उन्हें कोई कष्ट नहीं होता था। वे अपने कपड़े-लत्ते तथा कमरे की सफाई पर बराबर ध्यान रखते थे। उनके डेरे से हिन्दू विश्वविद्यालय तीन मील दूर था। वे पैदल जाते-आते थे।

वे आपाद-मस्तक स्वाभिमानी थे। जब वे सम्मेलन के अध्यक्ष थे तब बिहार में घूम-घूमकर साहित्यिक भाषणों से अलख जगाते थे। औरंगाबाद से वे पूर्णिया कॉलेज में प्राचार्य-पद पर नियुक्त हुए। उनके मित्रों की संख्या अधिक नहीं थी लेकिन जिन्हें उन्होंने अपना मित्र बनाया उन्हें अपना मित्र आजीवन बनाये रखा। वे अपने मित्रों के लिए बहुत कोमल थे और अन्यों के लिए बेहद कठोर।

वे नेत्र-रोग से पीडित हो गये। पूर्णिया और पटने में बहुत दिनों तक इलाज होता रहा। दुर्बलता बढ़ती गयी और अस्वस्थता भी। कई रोगों ने उनपर आक्रमण कर दिया। उनसे अन्तिम भेंट बीमारी की स्थिति में पटने में हुई थी। उनके मुँह, हाथ, पैर आदि सूज गये थे। वे बहुत कष्ट में थे। अन्त में वे पटना से पूर्णिया लौट गये। कॉलेज से उन्होंने छुट्टी ले ली थी। ५ मई, १९६४ ई० को उन्होंने अपने जीवन की ऐहिक लीला का पटाक्षेप किया। वे साहित्य में अमर रहेंगे। पं० जनार्दनप्रसाद झा का घर भागलपुर रेलवे स्टेशन से दस मील दक्षिण रामपुर डीह था। उसी गाँव में पटना हाई कोर्ट के मुख्य न्यायाधीश पं० सतीश मिश्र का भी घर था जो आजकल हिन्दी समिति के अध्यक्ष हैं।

महाकवि श्री सुमित्रानन्दन 'पन्त'

आजादी से पहले डॉ० राजेन्द्र प्रसाद, पं० जवाहरलाल नेहरू और डॉ० अनुग्रह-नारायणसिंह के साथ-साथ भारत के कोने-कोने को छान डाला था। बहुत कम स्थान होंगे, जहाँ मैं नहीं गया होऊँगा। इलाहाबाद मेरे ग्राम मिनाबदियारा (छपरा) से बहुत नजदीक है। वहाँ उतना अधिक जाता था जितना मैं कहीं गया नहीं। वहाँ दो आकर्षण थे—पहला 'हिन्दी साहित्यसम्मेलन' का कार्यालय और दूसरा 'आनन्दभवन' जहाँ राजनीति के महारथियों का जमघट लगा रहता था। मैं जब कभी इलाहाबाद जाता था, बेली रोड में डॉ० श्रीरंजन (उपकुलपति) के यहाँ ठहरता था, या राजेन्द्र-बाबू के साथ जाता था तब आनन्द-भवन में ठहरता था। शहर के कोने-कोने को छान डालता था। महाकवि श्री सुमित्रानन्दन 'पन्त' इलाहाबाद में बचपन से रहते थे। विद्यार्थी-जीवन के बाद वे वहीं रहने लगे। कभी-कभी वे घर जाते थे। लेकिन १९६६ ई० की फ़रवरी से पहले मेरा उनसे साक्षात्कार नहीं हुआ था। मेरा आत्मविश्वास है, हम दोनों एक-दूसरे से तथा रचनाओं से परिचित ज़रूर थे। 'माधुरी' और 'सुधा' के एक ही अंक में हम दोनों के चित्र भी कई बार छप चुके थे। कई बार लोग मुझसे पूछते थे—'आपको पन्तजी से परिचय है या नहीं ?' यह सुनकर मैं चुप रह जाता था और मुझे ग्लानि होती थी कि भारत के इतने बड़े कवि से मेरा साक्षात्कार नहीं हुआ है।

फ़रवरी, १९६६ ई० में इलाहाबाद में 'रेलवे-बुकस्टाल सलाहकार समिति' की बैठक थी जिसमें एक सदस्य के रूप में मुझे भी जाना जरूरी था। महाकवि पन्तजी को मैंने इस आशय का एक पत्र लिखा—"सात अचरजों में एक अचरज यह भी है कि हम दोनों का साक्षात्कार—देखा-देखी आज तक नहीं हुई। लोग जब मुझसे यह बात पूछते थे तब मैं कभी-कभी कह देता था कि मुझे परिचय नहीं है। लेकिन मेरी बात में किसी को विश्वास नहीं होता था।" पत्र में मैंने इलाहाबाद जाने की तिथि भी लिख दी। निर्धारित तिथि को मैं इलाहाबाद गया। 'बुक-स्टाल सलाहकार समिति' की बैठक के बाद मैंने श्री हरिप्रसाद वर्मा (सी० सी० एस०) से सारी बातें कहीं। मेरी बातें श्री जे० एस० के० भगत भी सुन रहे थे। उन्होंने कहा—'चलिए, मैं उनके डेरे तक आपको पहुँचा आऊँगा। मेरा घर वहीं है। लेकिन शाम में मेरे घर पर भी चलना होगा।'

श्री भगत में व्यवहार-कुशलता और कर्मठता कूट-कूटकर भरी हुई है। अपने मधुर-सरल व्यवहार से वे सबके हृदय-सम्राट् बन जाते हैं। वे नि:स्वार्थ भाव से

सबकी सेवा करते हैं। रेलवे के इतने बड़े अधिकारी होकर भी वे अभिमानी नहीं हैं। भारतीय जनता की नजरों में पहले वे मनुष्य हैं, बाद में बहुत-कुछ। वे अपनी व्यवहार-कुशलता से अपने उच्च पदाधिकारियों को भी प्रसन्न रखते हैं। उनके सदृश यदि सब विभागों में कुछ अधिकारी हो जायें तो देश का उद्धार हो जाय। आजकल श्री भगत दिल्ली में रेल-विभाग के रेल-भवन में अधिकारी-रूप में काम कर रहे हैं। हाकिमाना मिजाज उनका न कभी था न है। उनका समय बँधा हुआ है। वे सब काम समय पर करते हैं। कार्य के समय में यदि कोई कार्यालय में उनके पास आ जाय तो वे उससे जरूर मिलते हैं। उनका कहना है कि 'मिलना भी तो एक काम है। यदि कोई मुझसे कुछ उम्मीद लेकर दूर से मिलने को आता है और यदि मैं उससे नहीं मिलूँ तो उसे तकलीफ होगी। इसलिए मैं सब काम छोड़कर आए हुए सज्जन से मिलता हूँ और जो उचित काम होता है मैं मदद भी कर देता हूँ।'

मैं ४ जून १९६१ ई० को रेल-भवन में उनसे मिला था। जब तक मैं उनके पास रहा, ऐसा मालूम पड़ता था कि मैं किसी महापुरुष के पास बैठा हूँ। वे रेल का ताना-बाना अपनी लेखनी से, दिल और दिमाग से बुनते जाते थे और मुझ-जैसे छोटे लोगों से भी बातें करते जाते थे। हाँ, तो वे मोटर से मुझे श्री पन्तजी के डेरे तक पहुँचाकर अपने घर चले गये। मैं एक बहुत बड़े अहाते के अन्दर गया जहाँ फूल-पत्ती के बीच एक सुन्दर बँगला है। पन्तजी अपने हरे-भरे फूलों में पानी पटा रहे थे। फूल अपनी सुन्दरता से आगत अतिथियों के मन को मुग्ध कर रहे थे। पन्तजी की नजर ज्यों ही मुझपर पड़ी, वे पानी पटाना छोड़कर बड़े उल्लास के साथ मेरे पास आये। मैंने कहा—'मेरा नाम सुहृद्।' उन्होंने कहा—"आपको मैं अच्छी तरह जानता हूँ।" वे मुझे अपने कमरे में ले गये। वहाँ सभी वस्तुएँ अपनी-अपनी सुनिश्चित जगह सुन्दर ढंग से सजी हुई थीं। वहाँ न व्यर्थ तिनका था, न छत पर मकड़े का जाल। ईंट-पत्थरों से निर्मित छोटा मकान कह रहा था—'मैं और घरों से कुछ और हूँ, मुझे मात्र भवन के रूप में न देखिए।' कण-कण में साहित्य की अदृश्य पावनता थी और चप्पे-चप्पे पर त्याग-तपस्या की मुहर नजरबन्द थी। सर्वत्र साधना और अजेयता की छाप छिटकी हुई थी। जब तक वहाँ रहा, हृदय उल्लास और परितृप्ति से गद्गद हो गया। करीब डेढ घण्टे तक हम सुख-दुःख की बातें बतियाते रहे। मैंने उन्हें सुहृद् नगर चलने का आग्रह किया। उन्होंने बड़े मधुर शब्दों में कहा—'इस साल गर्मी में पहाड़ पर जाने का कार्य-क्रम बना चुका हूँ। कभी दूसरे साल आपके यहाँ चलूँगा।' मैंने अपनी आत्म-कथा 'बीती बातें' उन्हें दी। उन्होंने पुस्तक लेते हुए हर्ष के साथ कहा—'मैं इसको देख चुका हूँ।'

जब तक हम दोनों एक-साथ बैठे रहे, सुख-दुःख की बातें करते रहे; कवि और कविता का हम लोगों ने नाम तक नहीं लिया।

पन्तजी के चेहरे पर एक अद्भुत गरिमामय आकर्षण है और मुस्कान में शिशु-सुलभ सरलता तथा आकृति पर एक अनुपम दिव्य ज्योति। जिस समय फूलों में पानी पटाना छोड़कर वे मेरे पास आये थे, उनके मुख पर थी सौम्यता। उनके स्वभाव में

सरलता है और व्यवहार एवं बोल-चाल में मधुरता। उन्होंने कीर्ति की कामना कभी नहीं की लेकिन उनकी कर्मशीलता अगणित पर्वों को ज्योतित कर रही है। महापुरुषों की बातें, मिलना-जुलना आदि साहित्यकारों की वाणी में अमर हो जाते हैं। कौन जानता था कि उस दिन का हम दोनों का मिलना संस्मरण का रूप धारण करेगा! पहली मुलाकात में हम लोग ऐसे हिल-मिल गये जैसे हम पूर्व-परिचित हों। उनका बोलना-चालना, रहना-उठना-बैठना, व्यक्तित्व, सभी कुछ आकर्षक है। उनके स्वभाव में आत्मीयता कूट-कूटकर भरी हुई है। वे सबके हित में अपना हित मानते हैं। वे इस युग के एक महान् कवि, दार्शनिक और तत्त्व-चिन्तक के रूप में विख्यात हैं। जहाँ तक मैं समझता हूँ, सम्पूर्ण भारत के विद्वान् उन्हें आदर की दृष्टि से देखते हैं।

पन्तजी न स्वप्न-दर्शी हैं न भाग्यवादी। 'कर्मण्येवाधिकारस्ते' उनका मूल जीवन-दर्शन है। भूत और भविष्य की अपेक्षा वे वर्तमान को अधिक महत्त्व देते हैं। वास्तव में साहित्य का लोकमत पर बहुत प्रभाव पड़ता है और लोकमत भी उसी से जाना जाता है। पन्तजी के प्रति लोकमत क्या है, इसे भारत का बच्चा-बच्चा जानता है। इसपर मुझे आगे बढ़ने की जरूरत नहीं है, संकेत पर्याप्त है। जो कार्य सत्तात्मक शक्तियाँ नहीं कर सकतीं, साहित्य सहज ही कर डालता है। इसीलिए तो 'प्रेस एक्ट' बना था।

पन्तजी वैयक्तिक रूप से अत्यन्त सहृदय, उदार एवं प्रगतिशील हैं। अभिमान उन्हें छू तक नहीं गया है लेकिन स्वाभिमान की मात्रा उनमें भरपूर है। वे जिससे मिलते हैं, हृदय खोलकर मिलते हैं। आडम्बर और दिखावे से वे सदा दूर रहते हैं। सरल-निष्कपट व्यवहार उनकी विशेषता है। जीवन में किसी प्रकार का बन्धन और नियन्त्रण उन्हें अच्छा नहीं लगता। उनकी लहराती हुई केश-राशि और कोमल-प्रशान्त मुख-मण्डल की मादकता से अभिभूत कर देनेवाली उनकी सहज स्वर-लहरी उनके सम्बन्ध में आपकी बँधी हुई धारणा को अवश्य बदल देगी। आप विरोधी होकर भी उन्हें स्नेह-सम्मान के साथ अपनाने को विवश हो जायेंगे। आप उनकी कविताओं को पसन्द करें या न करें, उनके साथ बातचीत करके और उनके रंग-ढंग, रहन-सहन तथा शील-स्वभाव को देखकर यह मानना पड़ेगा कि वे सच्चे कवि हैं। उनका आवरण उनके आभ्यान्तरिक सौन्दर्य का परिज्ञापक मात्र है। जो भीतर से सुन्दर नहीं है वह बाहरी सुन्दरता से क्या कभी सुन्दर हो सकता है? उनकी वेश-भूषा जितनी सुन्दर है, उससे कहीं अधिक सुन्दर उनका दिल है। उनकी कविता और वाणी में जो अनुपम कोमलता और मधुरता भरी रहती है वह उनके हृदय की ही विभूति है—वह कहीं बाहर से नहीं आती।

वे बाहर और भीतर से मृदुल होकर भी अमृदुल सत्य कहने में कमी नहीं डरते। जो कुछ भी वे कहते हैं, मौलिक ढंग से, लेकिन इस दृढ़ता और स्वाभिमान के साथ कि लोगों को कहने का ढंग अच्छा लगता है और पढ़ने में मन को प्रसन्नता होती है; परन्तु बहुत लोग मन-ही-मन चिढ़कर उन्हें घमण्डी समझने लगते हैं। 'पल्लव' की भूमिका तथा 'गुंजन' का 'ओ मेरे कोमल गान' सबको प्रिय लगते हैं, पर चिढ़नेवाली

तें जो उनमें 'छिपे रुस्तम' की तरह आ गयी हैं कुछ लोगों को चिढ़ाकर ही छोड़ती । इन चीज़ों का पाठक यह महसूस करता है कि इनका लेखक अपने व्यक्तित्व का तिरंजित महत्त्व अनुभव करनेवाला कोई एक निरंकुश मनुष्य है। वस्तुतः पन्तजी ने मनोगत भावों को छिपाना नहीं जानते। हम उसे अहम्मन्यता कहें या स्वभाव की लता या हृदय की सचाई ? वे सरल सत्य के पुजारी हैं।

जिस तरह कला किसी भी बन्धन-बाधा को मानकर नहीं चलती, वे भी उन्मुक्त जीवन का यह उन्मुक्त प्रवाह उन्हें घुमा-फिराकर इस संसार में ही रखता है। वे र से लिपटे हुए हैं, विरागी नहीं हैं। उनके अन्दर प्रेम है, करुणा है, माया है, ममता सब-कुछ है किन्तु उन सबको वे स्वतंत्र रहकर ही अपनाये रखना चाहते हैं—सबमें त होकर नहीं।

काव्य साधना में सदैव संलग्न रहनेवाला उनका सच्चा हृदय उच्च भावनाओं मंगल कामनाओं से परिपूर्ण है। उसमें न द्वेष है न दंभ, न छल है न प्रपंच, लेकिन के अन्दर एक मृदुल वेदना अवश्य तड़पती रहती है क्योंकि अगर वह न हो तो कवि क्या ?

उनका जन्म संवत् १९५८ वि० को कौसानी में हुआ था। कौसानी कूर्माचल का एक सुन्दर हृदय हो। पन्तजी प्रकृति-देवी के अनन्य उपासक हैं। उनकी यिक प्रवृत्ति को परिपोषित करनेवाला पौष्टिक भोजन प्राकृतिक वैभव है। पहाड़ों र चरनेवाले स्निग्ध-श्यामल मेघ मानो अपना कुछ-न-कुछ खोकर उनकी आत्मा प्त किया करते हैं ; वसुन्धरा की हरियाली को अपनी पंख-प्रभा से प्रमुदित करने- मयूर-बालाएँ जैसे स्वयं नहीं नाचतीं, उनके अन्तस्तल के भीतर किलकनेवाले द को ही नचाती हैं ; मुक्तधारा कलकल संगीत, मालूम होता है, जैसे उनके आर्त- र विज्ञापन कर रहा हो और शरत् की बिखरी चाँदनी रात उनकी उल्लास- ता को मानो झूम-झूमकर बिखेरा करती है। उनका प्रभावग्राही तत्पर-हृदय की एक-एक मुस्कान पर लोट-पोट हो जाता है और एक-एक अदा पर झूमने है। प्रकृति के महोत्सव में लीन रहनेवाला उनका हृदय काव्यानुभूति से परिपूर्ण ानव-हृदय और प्रकृति के बीच मधुर सामञ्जस्य संस्थापित करनेवाली गंभीर र के सर्जक के रूप में वे भारत के इने-गिने कवियों में से एक हैं।

उनके बचपन में ही उनकी माता स्वर्गवासिनी हो गयी थीं। भाइयों में सबसे ने के कारण उन्हें सर्वाधिक प्यार-दुलार मिला। माता के नहीं रहने से सर्वसुख- होते हुए भी वे बचपन में जो संकोची हुए, वह आज तक संकोची बने हुए हैं। जीवन में अनेक संघर्ष किये हैं और शरीर को न जाने कितने रोगों से जूझना जिनमें वे सर्वत्र विजयी रहे हैं। वे मुझसे दो वर्ष छोटे हैं लेकिन भारी शरीर ारण बुढ़ापे के लक्षण अब झलकने लगे हैं।

हाँ, तो करीब डेढ़ घण्टे के बाद वहाँ से चलने की तैयारी की। पन्तजी अपने क आये। श्री जे० एस० के० भगत भी निर्धारित समय आकर सड़क पर ही बैठे रहे। पन्तजी से विदा होकर मैं श्री भगत के घर गया। वहाँ रेल के साथी

सभा सदस्य पहले से आकर बैठे हुए थे। वहाँ हम लोग एक घण्टे से अधिक देर त
ठहरे। चाय-जलपान के बाद श्री भगत मुझे पंडित वाचस्पति पाठकजी के यहाँ पहुँचा
कर चले गये। मैंने अपना नाम लिखकर उनके चपरासी द्वारा भिजवा दिया। वे
बिगड़ते हुए मेरे पास आये और कहने लगे—'तुमको भी मेरे यहाँ आने में कार्
भेजने की जरूरत है?' हम दोनों एक घण्टे तक बतियाते रहे। बीच-बीच में चाय
चलती रही। फिर वहाँ से मैं स्टेशन गया, गाड़ी पकड़ी और दूसरे दिन बेगूसराय
पहुँच गया।

श्री ललितनारायण मिश्र

गोरा रंग, मँझोला कद, सुगठित भरा चेहरा, दिव्य मुखमंडल, कठिन शरीर, आँखों में मिलनसारिता और मृदुता के भाव—ये हैं भारत के विदेश-व्यापार राज्य-मंत्री श्री ललितनारायण मिश्र। इनका जन्म सहरसा जिले के बसान पट्टी गाँव में १९२३ ई० को एक सुखी सम्पन्न-परिवार में हुआ था। ये जिस व्यक्ति या संस्था को योग देते हैं सच्चे मन से देते हैं। यही कारण है, ये सबके विश्वास-पात्र बने रहते हैं। ये राजकीय आमंत्रण पर लन्दन का पर्यटन कर स्वदेश लौटे हैं।

जीवन का संघर्षमय होना अत्यन्त आवश्यक है। संघर्ष से मनुष्य का वास्तविक विकास होता है। यदि मनुष्य कठिन परिस्थितियों से लड़ सकता है तो वह विश्व-विजयी तक हो सकता है। यदि अपनी परिस्थितियों से लड़ने में उसकी पराजय होती है तो उसका सारा जीवन एक पराजित का जीवन रहेगा। मनुष्य परिस्थितियों का दास है। फिर भी वह उन्हें अपने पराक्रम से अपनी सुविधानुसार तोड़-मरोड़ सकता है। कर्मठ पुरुष परिस्थितियों से नहीं डरते। परिस्थितियाँ उनसे डरती हैं। ललित बाबू का जीवन भी संघर्ष का जीवन रहा है। इन्होंने अपनी परिस्थितियों से लड़ने का प्रयास बराबर किया है और बहुत अंशों में विजयी भी हुए हैं। विजय और पराजय, लाभ और हानि का कोई अविवाद नहीं। वे तो हृदय की अनुभूतियों के समान हैं। सम्भव है, हमारी विजय में ही हमारी हानि हो। फिर भी हम अपने नियमों पर डटे हुए रहेंगे और यही हमारी विजय है। ललित बाबू अपने नियमों के बड़े कट्टर पालक हैं और विजय उनके निर्भयतापूर्ण पालन में है।

छोटा हो या बड़ा, जो भी जैसा हो, ये सबसे हिल-मिलकर बातें करते हैं। इनके निजी आचरण में स्वाभाविकता एवं सादगी है तथा भीतर एवं बाहर से ये एक हैं। अपने चारों ओर सद्भाव, सौजन्य, शान्ति और सहिष्णुता का पूर्व-सम्पन्न वातावरण बनाये रखना, अपने कार्यक्षेत्र में सहयोग और सहानुभूति का संचार करते रहना—इनकी प्रशान्त मनोवृत्ति एवं एकनिष्ठा के द्योतक हैं।

विनम्रता-प्रदर्शन की चेष्टा का अभाव इन्हें कभी अविनयी, अशिष्ट या असहृदय बना दे, नहीं हो सकता। ये बिल्कुल स्वाभाविक ढंग से मिलेंगे और बातें करेंगे। इनके साथ व्यवहार-पथ पर चलते हुए आपको न किसी प्रकार का विस्मय होगा न क्षोभ। ये जितने ही परिचित से लगेंगे, उतने ही सुखद-से भी प्रतीत होंगे।

मनुष्य में जो गुण होने चाहियें, वे पूर्ण मात्रा में इनमें विद्यमान हैं। स्वभावगत मृदुलता इनका जन्मजात गुण है। बातें वे इतनी मुलायमियत से करते हैं और बातों में सज्जनता की मात्रा इतनी अधिक रहती है कि आदमी अनायास इनकी ओर खिंच जाता है।

इनका औदार्य गरीबों के लिए वरदान है। इनका व्यक्तित्व अनासक्त और निर्लिप्त है। ऐसा व्यक्तित्व जिस व्यक्ति में समाता है वह व्यक्ति-स्तर से उठकर संस्थोत्तर रूप ग्रहण करता है। यह बात श्री ललितनारायण मिश्र के जीवन में दिखाई देती है।

ये अपनी मान-प्रतिष्ठा के कभी भूखे नहीं रहे। ये निष्काम भाव से वासना-रहित हो बराबर देश की सेवा करते रहे। इनमें न यश की आकांक्षा है, न पद की लोलुपता, न विख्यात होने की लालसा। ये जो भी काम करते हैं निस्पृह भाव से कर्तव्य समझकर करते हैं। इनके व्यक्तित्व का समस्त वातावरण स्वाभाविकता से सजा रहता है। इसमें कहीं किसी प्रकार की अस्वाभाविकता या असुन्दरता के लिए स्थान नहीं।

सार्वजनिक सेवा-व्रत इनके परिवार की एक अमूल्य निधि है। इसलिए जीवन का प्रत्येक क्षण इनका सेवामय रहता है। विद्यार्थी-जीवन के पश्चात् इन्हें रूप से इनको सार्वजनिक सेवा का क्षेत्र प्राप्त हुआ। ये लगातार तीन बार विभिन्न विभागों में भारत के राज्य-मंत्री हुए हैं।

वे विद्यार्थी-जीवन में भी कुशाग्रबुद्धि के थे। वे इतने अधिक जागरूक और सर्वप्रिय थे कि इनके उज्ज्वल भविष्य का पूर्वाभास प्रत्येक व्यक्ति को स्पष्ट था। इन्होंने पटना विश्वविद्यालय से एम० ए० तथा कानून की परीक्षाएँ पास कीं। इनका व्यक्तित्व आधुनिक युग के महान् व्यक्तियों में एक है, इसमें किसी भी प्रकार की शंका की गुंजाइश नहीं है।

ये यदि चाहते तो अथाह धन अर्जित कर लेते लेकिन इन्हें अपनी न्यूनतम आवश्यकता की पूर्ति के अतिरिक्त और कुछ नहीं चाहिए। ये लोक निन्दा या आत्म-प्रशंसा से बचने की चेष्टा नहीं करते। ये निर्भीक रहना पसन्द करते हैं। अपने लिए कुछ करने के बदले इन्हें दूसरों के लिए कुछ करने में सन्तोष मिलता है जो आज के युग में दुर्लभ बात है।

ललित बाबू में विचार और कर्मठता का मणि-कांचन-संयोग है। बातचीत में ये बराबर कहते हैं कि शासक को यह बराबर याद रखना चाहिए कि शासन जनहित के लिए है न कि शासन करने के लिए।

इन्हें मैं बचपन से जानता हूँ—इस बीच समय का कोई अन्तर मुझमें आज तक नहीं आ सका। समय के साथ ही मेरी [illegible]

[illegible]

लगा और वह बराबर गाढ़ा ही होता गया—फीका होने की कोई बात ही नहीं आई। इनके चमकते चौड़े ललाट पर क्रोध और दुश्चिन्ताओं की क्रूर लिखावट नहीं है और सीधी भृकुटियों में असहिष्णुता का आकुंचन नहीं है। इनकी नाक पर दम का उतार-चढ़ाव नहीं है। इनके होठों पर निष्ठुरता की वक्रता नहीं है। इनकी ये विशेषताएँ इन्हें सबसे भिन्न करती हैं।

इनकी दृष्टि और मुस्कुराहट इन्हें किसी के निकट अपरिचित नहीं रहने देती। कभी-कभी इनका देखना और मुस्कराना इस तरह चलता है कि दृष्टि हँसती-सी लगती है और हँसी से दृष्टि का आलोक बरसता जान पड़ता है। ये स्वभाव से प्रसन्न और सरल हैं।

इनके व्यक्तित्व में जो फैलाव दृष्टिगोचर होता है वह बहुत कम लोगों में द्रष्टव्य है। जो इनके सम्पर्क में आता है, इनका हो जाता है। इनके व्यवहार में ऐसी आकर्षण-शक्ति है। ये गंभीर चिन्तन और ओजस्वी वाक्पटुता से मंडित हैं। भव्य मुखमंडल पर भोले भाव प्रत्यक्षतः दृष्टिगोचर होते हैं। सुगठित शरीर निर्बलों के लिए अनुपम उपासना का प्रतीक समझना चाहिए।

ये सबके हित में अपना हित मानते हैं। ईश्वर में ये विश्वास रखते हैं, इसलिए इनके मन में निर्भयता, निश्चिन्तता और कर्त्तव्यपरायणता की त्रिवेणी प्रवाहित होती है। पाप, ताप, दैन्य आदि इनके पास कभी नहीं आ सकते क्योंकि ये सदा ईश्वर-कृपा के प्रकाश में रहते हैं।

व्यावहारिक व्यक्ति राज्य के दैनिक व्यापार का सचालन तो कर सकते हैं किन्तु उसमें नये प्राण फूंकने के लिए ललित बाबू जैसे उत्साही व्यक्ति की जरूरत पड़ती है। उत्साह में बहुत बड़ा बल है। इससे बढ़कर अन्य कोई बल नहीं है। उत्साही व्यक्ति के लिए ससार में कोई वस्तु दुर्लभ नहीं है। जीवन की कोई भी परिस्थिति क्यों न हो, उत्साह सदैव उत्साही का सहायक होता है। ललित बाबू में उत्साह के साथ काम करने की लगन भी है। सभी प्रसिद्ध और उत्साही व्यक्ति अनेक विभिन्नताओं के बावजूद एक गुण में समान होते हैं—वे सभी अपने-अपने ध्येय के प्रति पूर्ण आशावान् होते हैं। ललित बाबू में भी यह आशावादिता प्रचुर रूप में है।

ये बराबर कहते हैं कि दिन हमेशा एक-से नहीं होते और ईमानदारी तथा सज्जनता ही फलती है। उनके मुखमंडल पर सौम्यता रहती है, स्वभाव में सरलता और व्यवहार में नम्रता। इसलिए ये बराबर कहते हैं कि कार्य मुख्य है और जीवन चलायमान है। ये अपने कार्य और जीवन दोनों में महान् हैं।

पूर्णिया और दरभंगा के बॉर्डर पर ही आपका मकान है। डॉ० सुधांशु का घर भी आपके घर के पास में ही है। डॉ० सुधांशु कभी-कभी ललित बाबू या उनके परिवार के लोगों की इस ढंग से तारीफ करते हैं जैसे कहानीकार अपनी लेखनी से कहानी गढ़ता जा रहा हो।

३ दिसम्बर, १९५४ ई० की बात है। पटना में एक विराट् कवि-सम्मेलन का आयोजन भूतपूर्व मंत्री श्री सत्येन्द्रनारायण सिंह एम० पी०, श्री ललितनारायण मिश्र

(अब राज्य-मन्त्री, भारत), श्री अम्बिकाशरण सिंह वगैरह ने *'इन्स्टिट्यूट हॉल'* में किया था, जिसका मैं सभापति था। उस सम्मेलन में प्रान्त के तथा प्रान्त के बाहर से अनेक कवि पधारे थे, साथ-ही-साथ अनेक ख्यातिलब्ध विद्वान् तथा साहित्यकार लोग पधारे थे। संयोगवश सर राधाकृष्णन्, सर सी० वी० रमण भी तथा मैथिलीशरण जी भी पधारे थे *जिससे सभा की रौनक बहुत अधिक बढ़ गयी।* राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त का कहीं से एक जरूरी तार आ गया जिससे वे अपनी लिखी हुई कविता कविराय ब्रजराजकृष्ण को सभा में पढ़ने के लिए देकर चले गए जिससे कि कवि सम्मेलन में रायसाहब ने उनकी कविता पढ़ी। सर राधाकृष्णन् और सर सी० वी० रमण ने भी साहित्य पर अंग्रेजी में भाषण दिया। जिस समय सर राधाकृष्णन् अंग्रेजी में भाषण दे रहे थे, *ललित बाबू ने एक पुर्जा पर मुझे लिखकर दिया कि ये* संस्कृत में भी बहुत सुन्दर भाषण देते हैं। दो-चार शब्द संस्कृत में भी इनको बोलने के लिए अनुरोध कीजिये। ललित बाबू के पुर्जा को मैंने चुपचाप रख लिया, उस समय इतना साहस नहीं हुआ कि मैं उनसे कुछ कहूँ।

राजा, अग्नि और जल का कोई ठिकाना नहीं; किस समय क्या कर देंगे, कोई *कुछ कह नहीं सकता।* कोसी नदी आपके जन्मभूमि बसान पट्टी गाँव को काटकर अपने पेट में ले गई। उसके बाद उस गाँव के लोग दहगांवा गाँव में जाकर बसे। कुछ वर्षों के बाद उस गाँव को भी कोसी नदी काटकर अपने पेट में ले गई। उसके बाद ये लोग अब बलुआ बाजार में जाकर बसे हैं। अपने कलाकौशल से इंजीनियरों ने कोसी नदी को बाँधकर अपने आधीन कर लिया। जो जमीन कोसी के पेट में चली गयी थी वह सब ऊपर आ गयी, इसलिए वहाँवाले सभी लोग काफ़ी खुशहाल हो गए हैं। कोसी के कारण जितने लोग दुःखी थे उतने ही अब सुखी हो गए हैं।

जब से आप राजनीति के क्षेत्र में आए तब से आप अपनी कर्मठता तथा व्यवहार-कुशलता के कारण एक-न-एक पद को बराबर सुशोभित करते रहते हैं। *अतिथि-सत्कार में ये किसी से कम नहीं हैं।* परिचित, अपरिचित, जो कोई भी इनके पास जाता है, यथाशक्ति सबको जलपान, चाय, शरबत वगैरह से सम्मानित करते हैं। मिलनेवाले तृप्त होकर इनके पास से जाते हैं।

श्री शंकरदयालसिंह, एम० पी०

गया जैसे ज़िले में बुद्ध जैसे राजा को ज्ञान प्राप्त हुआ जिसने सम्पूर्ण संसार को अपने ज्ञान के बल से अहिंसा का मंत्र दिया और नालन्दा जैसा विश्वविद्यालय खोला जिसमे ससारभर के छात्र शिक्षा प्राप्त करने आते थे और शिक्षा प्राप्त कर सम्पूर्ण ससार मे ज्ञान की ज्योति जलाते थे। इस ज़िले के भवानीपुर गाँव मे श्री शंकरदयालसिंह का जन्म २७ दिसम्बर, १६३७ ई० को एक सुसंस्कृत और सुख-सम्पन्न परिवार मे हुआ था। उनके पिता श्री कामताप्रसादसिंह 'काम' बिहार के साहित्यिक और राजनैतिक क्षेत्रो के सफल महारथी थे। उन्होंने दर्जनों पुस्तकें लिखी थी। 'पारिजात प्रकाशन' उनकी देन है। वे जब तक जीवित रहे, विधान-सभा के सदस्य बने रहे। उन्होने ऐसे अगणित साहित्यिक और राजनैतिक व्यक्तियो का पथ-प्रदर्शन और नेतृत्व किया जो आज चमक रहे हैं। लेकिन मध्याह्न के सूर्य की तरह 'काम' जी अस्त हो गये। उनके देहावसान के उपरान्त घर-बार का सारा बोझ श्री शंकरदयालसिंह पर आ गया। श्री शंकरदयालसिंह बचपन से ही बड़े प्रतिभाशाली और कुशाग्रबुद्धि थे। उनकी साहित्यिक रुचि जन्मजात है और भाषा-ग्रहण-शक्ति बड़ी विलक्षण है। उन्होने बनारस में बी० ए० तक शिक्षा ग्रहण की। इसके बाद वे पटना मे आ गये। यहीं से एम० ए० और कानून की परीक्षाओ में उत्तीर्ण हुए। वे योग्य पिता के योग्य पुत्र हैं। उन्होंने पारिवारिक झंझटों को धैर्यपूर्वक सँभाला और अपने कार्यों से अपनी कर्मठता और व्यवहार-कुशलता का परिचय दिया। वे सम्पूर्ण कार्य सुचारु रूप से चलाने लगे। धीरे-धीरे वे साहित्य और राजनैतिक क्षेत्र मे भी काम करने लगे। वे 'बिहार प्रान्तीय काग्रेस' के कई वर्षों से प्रचार-मंत्री रहे हैं, ए० आई० सी० सी० के एक सक्रिय सदस्य हैं तथा 'बिहार प्रान्तीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन' के अर्थ और प्रचार-मंत्री हैं। उनकी योग्यता, कर्मठता और व्यवहार-कुशलता को देखकर बिहार की जनता ने उन्हे चतरा क्षेत्र से मार्च, १६७१ ई० में लोकसभा का सदस्य निर्वाचित किया।

श्री शंकरदयाल जी का अपना एक अनूठा और निराला व्यक्तित्व है। इस व्यक्तित्व की विशेषता है साहित्य एवं राजनीति का अनुपम समन्वय। वे अपने चिन्तन से अन्यान्य क्षेत्रो में भी अपनी कर्मठता की छाप अंकित करते रहते हैं। वे बड़े ही उदार, बुद्ध-प्रबुद्ध, मित्र, दार्शनिक, पथ-प्रदर्शक और प्रतिभा-पुंज हैं। वे कवि नहीं हैं लेकिन

'कवि-हृदय' के रूप में विख्यात हैं। वे अतीव चरित्रवान्, उदार, स्नेही, सरल, निष्कपट, विशुद्ध एवं महान् हैं।

उनका जीवन सादगी से भरा है। उनका व्यक्तिगत व्यवहार इतना मधुर है कि जो उनके सम्पर्क में आते हैं, वे उन्हें कभी विस्मृत नहीं कर सकते। मिलनेवालों को वे अपनी निश्छल प्रकृति एवं उन्मुक्त हास्य से प्रभावित कर देते हैं। राजनीति या साहित्य, किसी भी क्षेत्र में बड़े-से-बड़े व्यक्तित्व के समक्ष उन्होंने कभी अपने में हीनता-बोध का अनुभव नहीं किया। उनका हृदय जितना उदार है उतना ही उनका दृष्टिकोण विशाल है। समाज के दीन, दरिद्र, शोषित, अपमानित और लांछित जीवन के प्रति उनके हृदय में असीम वेदना है। धन-वैभव की अपेक्षा वे मनुष्य की मर्यादा को—मनुष्यत्व को अधिक ऊँचा स्थान देते हैं। दल-विशेष से सम्बन्ध होने पर भी दलीय राजनीति की क्षुद्रता एवं संकीर्णता से वे परे हैं।

उन्होंने अनेक पुस्तकें लिखी हैं जिन्हें पाठकों ने बहुत पसन्द किया है। वे सम्पादन-कला में भी प्रवीण हैं। वे आजकल 'उन्मुक्त' नामक साप्ताहिक पत्रिका का सम्पादन सुयोग्यतापूर्वक करते हैं। उनके सम्पादकत्व में 'उन्मुक्त' ने अपने नाम की सार्थकता सिद्ध की है।

वे बहुत बड़े साहित्यानुरागी और राजनीतिज्ञ हैं। वे प्रसिद्ध हों या अप्रसिद्ध, सभी राजनीतिज्ञों और साहित्यिकों का सम्मान करते हैं। वयोवृद्ध हों या नवयुवक, सभी उनके साहित्यिक दरबार (पारिजात प्रकाशन) में बैठते हैं और सुनकर बोलते हैं। उनकी मस्ती, जिन्दादिली, हँसी, ठहाका और अट्टहास मित्रों के दिल और दिमाग में गूँजते हैं।

उन्होंने अपने पर श्रेष्ठता लादी नहीं है। वे मूर्तिमान् श्रेष्ठ हैं, किसी के बनाये हुए नहीं। साहित्य और राजनीति में वे धवलगिरि की धवल चोटी के समान स्वच्छ, पवित्र और महान् हैं। इतने महान् होते हुए भी उनका दिमाग बादलों में नहीं, वरन् साधारण जनता में है।

उनकी प्रकृति में सरलता और सरसता का मणि-कांचन-योग है। वे करुणा के अवतार हैं। उनका मनुष्यत्व उनकी साहित्य-सेवा और व्यक्तित्व से कहीं अधिक ऊँचा है। वे नैसर्गिक सौन्दर्य और सजावट की कला के प्रशंसक हैं और पसन्द करनेवाले हैं। उनकी पसन्दगी उनके मन, कर्म और वचन में व्याप्त है। उनके विचारों में जहाँ नैसर्गिक सौन्दर्य है वहाँ सजावट भी। उनकी रचनाओं में मधुर-कोमल-कान्त पदावलियों का जड़ाव नग की तरह है। उनके घर की सजावट, बाग और मकान उनकी रुचि को क्रिया के रूप में परिणत कर दिखाते हैं।

वे कहते हैं कि हमें मुरझाया हुआ मन नहीं रखना चाहिए। वे लेखकों की उत्साह-वृद्धि के लिए उनकी रचनाओं को पुस्तकाकार छपवा देते हैं। वे आश्रितों की रक्षा करना अपना धर्म मानते हैं। वे हँसमुख हैं और मधुरभाषी भी।

उनके रोम-रोम में आत्म-गौरव भरा हुआ है। लेकिन वे अभिमानी नहीं हैं। जो लोग उनसे मिलने को आते हैं, उनका वे यथा-योग्य सम्मान करते हैं। गुरुजनों

के प्रति उनकी नम्रता सराहनीय है। जो कोई भी उनसे अपनी राम-कहानी सु
है, वे उसका यथासाध्य उपकार अवश्य कर देते हैं। दूसरों के दुःख को देखकर उ
हृदय द्रवित हो जाता है। वे शब्दों का प्रयोग सावधानतापूर्वक करते है जो उ
हृदयगत भावों के व्यंजक होते हैं। वे अपनी सारी वस्तुएँ अच्छे-से-अच्छे ढंग से र
हैं। यह उनकी कलाप्रियता का परिचायक है। वे उन महान् नवयुवक विभूतियों
हैं जिनपर हमें गर्व है। उनके समान अतिथि-सत्कार-परायण व्यक्ति बहुत कम हैं
नये-पुराने साहित्यकारों के बीच अपना साहित्यिक व्यक्तित्व बेजोड़ बनाये हुए
पुरानों के बीच वे नये दिखते हैं और नयों के बीच पुराने दिखते हैं। उनका व्यक्ति
आडम्बर-शून्य है। उनकी मिलनसारिता बड़ी मधुर है। मिलने-जुलनेवालों से वे
उकताते नहीं। छोटा हो या बड़ा, वे सभी को समभाव से अपना लेते हैं। जो
पहली बार मिलता है, वह समझता है कि प्रेम ही उनकी प्राणशक्ति है। वस्तुत
राजनीति और साहित्य में एक नयी ज्योति जगानेवाले हैं।

वे उन व्यक्तियों में प्रमुख हैं जो समाज या शासकों के समक्ष अपने वि
निर्भीकतापूर्वक रखते हैं। उन्होंने प्रतिक्रियावादी विचारों के विरुद्ध अपनी आ
सदा बुलन्द की है। उनके पैर सदा प्रगति की ओर बढ़े हैं। समाजवाद भारत
प्रत्येक व्यक्ति चाहता है लेकिन तरीके अलग-अलग हैं। देश के अधिकतर लोग च
हैं कि महल की बगल में अगर झोपड़ी है तो वह भी महल बन जाय। महल को
कर उसको भी झोपड़ी बनाना समाजवाद नहीं है। हर झोपड़ी महल के बराबर
बन जाय—इसे रामराज्य कहते हैं। मैं समझता हूँ, शंकरदयाल जी का प्रगति
विचार भी इससे भिन्न नहीं है।

शंकरदयाल जी जीवन-कला के एक अमर कलाकार हैं। जिस प्रकार
कलाकार रंग, तूलिका और कागज की सहायता से अपने अन्तर्जगत् की सुन्दरता
बाह्य-जगत् में बिखेरकर विश्व-कल्याणार्थ अपनी सेवा अर्पित करता है, उसी प्र
वे जीवन के सभी साधनों, मात्राओं तथा अरमानों का सुन्दर-से-सुन्दर उपयोग
विश्व-कल्याणार्थ अनुपम जीवन-कला उपस्थित करते हैं। हम अपने तन, मन और
का सुन्दर उपयोग कैसे कर सकते हैं, वे इस कला का निर्देश करते है और नि
करते हैं समय का और सम्पूर्ण जीवन का। विश्व-कल्याणार्थ समय और जीवन
सबसे सुन्दर और कलात्मक उपयोग कैसे हो, इसे उनसे सीखें।

देश में कुछ लोग ऐसे हैं जो थोड़ा-सा भी ऊपर उठे कि अपने से छोटे
को भूल जाते हैं। उन लोगों से बोलना भी अपना अपमान समझते हैं। थोड़े ही
में श्री शंकरदयाल सिंह अपनी योग्यता से, अपनी विद्वत्ता से, अपनी उदारता से दे
देखते भारत के कोने-कोने में सुप्रसिद्ध हो गये। देश-विदेश में भी उन्होंने काफी
प्राप्त किया। इतना ऊपर उठने में एक ही बात है जिसमें उनकी मदद मिली है
है उनकी सरलता और व्यवहारकुशलता। विदेश में जाकर भी मेरे-जैसे छोटे
को नहीं भूलते हैं। अभी-अभी ता० ४-४-७२ को मास्को से जो उनका पत्र मेरे

'कवि-हृदय' के रूप में विख्यात हैं। वे अतीव चरित्रवान्, उदार, स्नेही, सरल, निष्कपट, विशुद्ध एवं महान् हैं।

उनका जीवन सादगी से भरा है। उनका व्यक्तिगत व्यवहार इतना मधुर है कि जो उनके सम्पर्क में आये हैं, वे उन्हें कभी विस्मृत नहीं कर सकते। मिलनेवालों को वे अपनी निश्छल प्रकृति एवं उन्मुक्त हास्य से प्रभावित कर देते हैं। राजनीति या साहित्य, किसी भी क्षेत्र में बड़े-से-बड़े व्यक्तित्व के समक्ष उन्होंने कभी अपने में हीनता-बोध का अनुभव नहीं किया। उनका हृदय जितना उदार है उतना ही उनका दृष्टिकोण विशाल है। समाज के दीन, दरिद्र, शोषित, अपमानित और लांछित जीवन के प्रति उनके हृदय में असीम वेदना है। धन-वैभव की अपेक्षा वे मनुष्य की मर्यादा को—मनुष्यत्व को अधिक ऊँचा स्थान देते हैं। दल-विशेष से सम्बन्ध होने पर भी दलीय राजनीति की क्षुद्रता एवं संकीर्णता से वे परे हैं।

उन्होंने अनेक पुस्तकें लिखी हैं जिन्हें पाठकों ने बहुत पसन्द किया है। वे सम्पादन-कला में भी प्रवीण हैं। वे आजकल 'उन्मुक्त' नामक साप्ताहिक पत्रिका का सम्पादन सुयोग्यतापूर्वक करते हैं। उनके सम्पादकत्व में 'उन्मुक्त' ने अपने नाम की सार्थकता सिद्ध की है।

वे बहुत बड़े साहित्यानुरागी और राजनीतिज्ञ हैं। वे प्रसिद्ध हों या अप्रसिद्ध, सभी राजनीतिज्ञों और साहित्यिकों का सम्मान करते हैं। वयोवृद्ध हों या नवयुवक, सभी उनके साहित्यिक दरबार (पारिजात प्रकाशन) में बैठते हैं और खुलकर बोलते हैं। उनकी मस्ती, जिन्दादिली, हँसी, ठहाका और अट्टहास मित्रों के दिल और दिमाग में गूँजते हैं।

उन्होंने अपने पर श्रेष्ठता लादी नहीं है। वे मूर्तिमान् श्रेष्ठ हैं, किसी के बनाये हुए नहीं। साहित्य और राजनीति में वे धवलगिरि की धवल चोटी के समान स्वच्छ, पवित्र और महान् हैं। इतने महान् होते हुए भी उनका दिमाग बादलों में नहीं, वरन् साधारण जनता में है।

उनकी प्रकृति में सरलता और सरसता का मणि-कांचन-योग है। वे करुणा के अवतार हैं। उनका मनुष्यत्व उनकी साहित्य-सेवा और व्यक्तित्व से कहीं अधिक ऊँचा है। वे नैसर्गिक सौन्दर्य और सजावट की कला के प्रशंसक हैं और पसन्द करनेवाले हैं। उनकी पसन्दगी उनके मन, कर्म और वचन में व्याप्त है। उनके विचारों में नैसर्गिक सौन्दर्य है वहाँ सजावट भी। उनकी रचनाओं में मधुर-कोमल-कान्त वलियों का जड़ाव नग की तरह है। उनके घर की सजावट, बाग और मकान रुचि को क्रिया के रूप में परिणत कर दिखाते हैं।

वे कहते हैं कि हमें मुरझाया हुआ मन नहीं रखना चाहिए। वे
उत्साह-वृद्धि के लिए उनकी रचनाओं को पुस्तकाकार छपवा देते हैं।
रक्षा करना अपना धर्म मानते हैं। वे हँसमुख हैं और

उनके रोम-रोम में आत्म-गौरव भरा हुआ है
हैं। जो लोग उनसे मिलने को आते हैं, उनका वे यथा

ी उठा सकते हैं। कहते है कि कुछ दिन पहले हिन्दुस्तान मे शतावधानियों की सख्या आज जैसी थोड़ी नहीं थी। शतावधानी उस पुरुष को कहते है जो एक साथ सौ कामों पर निगरानी रख सके। ऐसे लोगों में बाबूजी का अन्यतम स्थान है और यही कारण है कि जो लोग उनके गुणों को भली-भांति जानते है वे उनकी प्रशंसा उस प्रकार करते हैं जैसे किसी अन्य के बारे में नहीं कहा जाता। यह ससार अपूर्व प्रतिभाशाली लोगों से चलते कायम नहीं है बल्कि उसके जीवन और उत्थान के प्रधान कारण वे लोग है जिनका बुद्धिमंडल साफ और अध्यवसाय की क्षमता अपरिमित और अनन्त है। स्वच्छ साधारण बुद्धि और घोर परिश्रम, बस यही दो गुण हैं जिनसे कर्मठ नायकों का निर्माण होता है। इसमे कोई संदेह नहीं कि इस दृष्टि से बाबू जी उन थोडे लोगों में से है जो समाज मे सार्वजनिक जीवन को प्रतिष्ठा के साथ कायम रखे हुए हैं। आप गम्भीर तथा विचारक भी है। शोहरत से दूर भागना बाबूजी की आदत है, लेकिन वह दौड़कर इन्हे पकड लेती है और फिर ये भाग नही सकते। सार्वजनिक कामों मे भी हाथ बँटाते हैं। जो काम ये करते हैं वह ठोस। 'के० एम० क्लब' इन्होंने बनवाया। 'लाएन्स क्लब' को मकान अभी तक नहीं है, उसमे मकान बनाने के लिये बीस हजार रुपैया दानस्वरूप बाबूजी ने दिया है, तथा और देने के लिये भी तैयार हैं।

सब तरह के सुखो से घिरे रहने पर भी मदान्धता के प्रदर्शन का रोग इन्हे नहीं है और न आलस्य के अभिशाप को ही ये कभी अपने पास आने देते है। धीर किन्तु निश्चित गति से अपने कर्ममय जीवन-पथ पर ये अविराम और अविरोध चलते रहते हैं। विश्राम की सुविधाएँ बुलाती रह जाती है किन्तु परिश्रम की प्रेरणाओं का साथ ये कभी नहीं छोड़ते। बड़प्पन बराबर इन्हे ऊपर ही उछालता रहता है, पर विनयशीलता कभी नीचे नहीं गिरने देती। सेवापरायण, द्रव्य कमाने में कुशल किन्तु उसे सत्कार्य मे लगाने मे उदार। मित्र-निष्ठ, राष्ट्रभक्त, समद्रष्टा हैं। उनमे शौर्य, धैर्य, औदार्य, कर्तृत्व एक-साथ विद्यमान हैं जिससे वह सहज ही प्रतिभावान् और इतना सब होते हुए भी श्रेयार्थी बन सके। ऐसे पुरुष बहुत कम मिलते है। उनका ध्येय पवित्र है, कल्याणकारी है। देश के इस महान् चिन्तापूर्ण सकटकाल मे भगवान् हम सबको इस प्रकार देश और समाज के लिए त्याग, कष्ट-सहन और पारस्परिक स्नेह और आदर रखने की प्रेरणा दें।

विष्णुदेव बाबू के साथ दो-चार घंटे रहने के बाद तुरन्त पता चल जाता है कि वे निर्मल और पुण्य पुरुष हैं। मानवता के पुजारी विष्णुदेव बाबू के समान बहुत कम आदमी हैं। ऐसे उदार हृदय के साथ अगर बैठनेवालों का सम्बन्ध हुआ तो उन लोगों का कल्याण ही होगा, चरित्र तथा मानवता का ऊँचा खयाल लोगों को मिलेगा। उनके साथ बैठनेवालों का जैसे-जैसे मानवता से परिचय बढ़ता है वैसे-वैसे उनके साथ बैठनेवालों की उनके प्रति आदर-श्रद्धा बढ़ती जाती है। नम्र और उदार-बनकर वे सभी की सेवा करते हैं। उनकी नजर मे कोई पराया नही है। वे सबको एक नज़र से देखते हैं, सबकी एक-समान इज़्ज़त करते हैं। उनकी नज़र में कोई छोटा-बड़ा नहीं है, उनकी नज़र मे मानव सिर्फ मानव है। यही समझकर सबकी मदद करते

व्यवहार में नहीं लाते। ये शक्तिशाली, उत्साही, प्रभावशाली भी हैं, क्योंकि ये बराबर अपने विचारों को कार्यरूप में परिणत करते हैं।

मानव-शरीर धारण करने के नाते दुर्बलताएँ सभी लोगों में होती हैं; विष्णुदेव बाबू में भी हैं लेकिन उन दुर्बलताओं पर वे अपना अधिकार रखते हैं, औरों के ऐसा उसका शिकार नहीं बन जाते। विष्णुदेव बाबू का व्यक्तित्व उस वृक्ष की तरह है जो निरन्तर बढ़ रहा है। उन्हें देखकर भरोसा होता है, बल मिलता है और यहीं वे एक सफल शासक हैं। बोलना कम, काम पूरा, ढीला जरा भी नहीं, इतने विद्वान् और धनवान् को जरा भी गर्व नहीं, यह भी ईश्वर की ही कृपा है। कोई इन्हें देखकर इनकी भेषभूषा से यह नहीं कहेगा कि विष्णुदेव बाबू इतने बड़े आदमी हैं। ये कभी किसी को कड़ी जबान नहीं कहते। नम्रता तो उनमें कूट-कूटकर भरी है। वे बराबर कहा करते हैं कि—

"कुदरत को नहीं पसन्द है सख्ती बयान में।
इसलिये ही है नहीं हड्डी जुबान में।"

विष्णुदेव बाबू एड़ी से माथे तक दिनरात पसीना बहाकर सुबह से शाम तक (कभी-कभी बारह बजे रात तक) मिहनत करते हैं। अपने ही नहीं, अपने लड़कों से भी मिहनत करवाते हैं और मिहनत करके पैसा कमाते हैं, तब इतने बड़े आदमी बने हैं। मुझे भी इधर कुछ वर्षों से उनके पास बैठने-उठने का सौभाग्य प्राप्त हुआ है। उनकी ईमानदारी और मिहनत देखकर तो मैं दंग रहता हूँ। रात्रि में कभी-कभी काम करते-करते जब वे थक जाते हैं तब केवल दस मिनट सो जाते हैं, उसके बाद फिर उठकर उसी जोश-खरोश के साथ काम करने लगते हैं; पैसा कमाकर सदुपयोग करते हैं; अच्छे कामों में दान-पुण्य करते हैं; अस्य योग्य व्यक्ति को दान देते हैं जिससे दान लेनेवाला उस रुपये को सदुपयोग में लावे। उनके यहाँ शिवजी की बारात की तरह हर फिरके के लोग आते-जाते हैं। सबको अपनी मीठी बोली से प्रसन्न कर विदा करते हैं। उनकी मिहनत और व्यवहार को देखकर कभी-कभी लोगों को आश्चर्य होता है कि इतना काम-धाम से घिरे हुए रहने के बाद भी इतना धैर्यपूर्वक सबसे बातें करना, यह भी ईश्वर की ही देन है। घर में या मेरे-जैसे लोग उनको 'बाबू जी' कहकर पुकारते हैं। बूढ़े-पुराने 'नूनू बाबू' कहते हैं। हाकिम-हुक्काम या साथी लोग 'विष्णुदेव बाबू' और बाहर से आए हुए सेठ-साहूकार 'बाबू साहब' से सम्बोधित करते हैं। नौ बजे, दस बजे रात्रि तक तरह-तरह के लोग वहाँ उठते-बैठते आते जाते हैं—चाय-जलपान, कभी-कभी भोजन भी चलता रहता है लेकिन कभी भी इस तरह की बातें वहाँ सुनने में नहीं आतीं जिससे किसी को कुछ नापसन्द हो, और न कभी किसी को शिकायत ही किसी के मुँह से वहाँ सुनने में आती है। यह सब बाबूजी के संस्कार और व्यवहार का ही प्रभाव है। काम चाहे जितना भी क्यों न हो, ऐसा दीखता है कि यह बाबूजी की कार्यक्षमता के लिये काफी नहीं होता। वे एक हाथ से अपने कारोबार के कागजात लिखते हैं तो दूसरे हाथ से सार्वजनिक कामों को आगे बढ़ाने की ...। उनकी बुद्धि इतनी विशाल है कि वे अनेकों गुरुतम कार्यों का बोझ एक-साथ

ही उठा सकते हैं। कहते है कि कुछ दिन पहले हिन्दुस्तान मे शतावधानियो की संख्या आज जैसी थोड़ी नही थी। शतावधानी उस पुरुष को कहते हैं जो एक साथ सौ कामो पर निगरानी रख सकें। ऐसे लोगों मे बाबूजी का अन्यतम स्थान है और यही कारण है कि जो लोग उनके गुणों को भली-भांति जानते है वे उनकी प्रशंसा उस प्रकार करते हैं जैसे किसी अन्य के बारे में नही कहा जाता। यह ससार अपूर्व प्रतिभाशाली लोगों से चलते कायम नहीं है बल्कि उसके जीवन और उत्थान के प्रधान कारण वे लोग हैं जिनका बुद्धिमडल साफ और अध्यवसाय की क्षमता अपरिमित और अनन्त है। स्वच्छ साधारण बुद्धि और घोर परिश्रम, बस यही दो गुण हैं जिनसे कर्मठ नायकों का निर्माण होता है। इसमे कोई संदेह नहीं कि इस दृष्टि से बाबू जी उन थोड़े लोगो मे से हैं जो समाज मे सार्वजनिक जीवन को प्रतिष्ठा के साथ कायम रखे हुए हैं। आप गम्भीर तथा विचारक भी हैं। शोहरत से दूर भागना बाबूजी की आदत है, लेकिन वह दौड़कर इन्हे पकड़ लेती है और फिर ये भाग नहीं सकते। सार्वजनिक कामो मे भी हाथ बँटाते हैं। जो काम ये करते हैं वह ठोस। 'के० एन० क्लब' इन्होंने बनवाया। 'लाएन्स क्लब' को मकान अभी तक नही है, उसमे मकान बनाने के लिये बीस हजार रुपैया दानस्वरूप बाबूजी ने दिया है, तथा और देने के लिये भी तैयार हैं।

सब तरह के सुखो से घिरे रहने पर भी मदान्धता के प्रदर्शन का रोग इन्हे नहीं है और न आलस्य के अभिशाप को ही ये कभी अपने पास आने देते हैं। धीर किन्तु निश्चित गति से अपने कर्ममय जीवन-पथ पर ये अविराम और अविरोध चलते रहते हैं। विश्राम की सुविधाएँ बुलाती रह जाती हैं किन्तु परिश्रम की प्रेरणाओ का साथ ये कभी नहीं छोड़ते। बड़प्पन बराबर इन्हे ऊपर ही उछालता रहता है, पर विनयशीलता कभी नीचे नहीं गिरने देती। सेवापरायण, द्रव्य कमाने मे कुशल किन्तु उसे सत्कार्य में लगाने मे उदार। मित्र-निष्ठ, राष्ट्रभक्त, समदृष्टा हैं। उनमे शौर्य, धैर्य, औदार्य, कर्तृत्व एक-साथ विद्यमान हैं जिससे वह सहज ही प्रतिभावान् और इतना सब होते हुए भी श्रेयार्थी बन सके। ऐसे पुरुष बहुत कम मिलते हैं। उनका ध्येय पवित्र है, कल्याणकारी है। देश के इस महान् चिन्तापूर्ण संकटकाल मे भगवान् हम सबको इस प्रकार देश और समाज के लिए त्याग, कष्ट-सहन और पारस्परिक स्नेह और आदर रखने की प्रेरणा दें।

विष्णुदेव बाबू के साथ दो-चार घंटे रहने के बाद तुरन्त पता चल जाता है कि वे निर्मल और पुण्य पुरुष हैं। मानवता के पुजारी विष्णुदेव बाबू के समान बहुत कम आदमी हैं। ऐसे उदार हृदय के साथ अगर बैठनेवालों का सम्बन्ध हुआ तो उन लोगों का कल्याण ही होगा, चरित्र तथा मानवता का ऊँचा खयाल लोगों को मिलेगा। उनके साथ बैठनेवालों का जैसे-जैसे मानवता से परिचय बढ़ता है वैसे वैसे उनके साथ बैठनेवालों की उनके प्रति आदर-श्रद्धा बढ़ती जाती है। नम्र और उदार-बनकर वे सभी की सेवा करते हैं। उनकी नजर मे कोई पराया नहीं है। वे सबको एक नजर से देखते हैं, सबकी एक-समान इज्जत करते हैं। उनकी नजर मे कोई छोटा-बड़ा नहीं है, उनकी नजर में मानव सिर्फ मानव है। यही समझकर सबकी मदद करते

आए हैं और करते रहते हैं। विष्णुदेव बाबू सच्चे अर्थों में पुण्यात्मा हैं। ग़रीब-अमीर उनकी नज़र में न कोई बड़ा है न छोटा है—केवल मानव है। उनका कहना है कि मनुष्य को कर्म का फल अवश्य मिलता है, चाहे आज मिले या कल। उनके जैसा श्रेष्ठ, उद्दात्त एवं प्रेम तथा आदर करने लायक चरित्र बहुत कम लोगों में मिलता है।

डॉ० श्रीनिवास

भारतीय चिकित्सा-जगत् में ही नहीं, अन्तर्राष्ट्रीय जगत् मे भी, विशेषतः हृदय-चिकित्सा के क्षेत्र मे डॉ० श्रीनिवास का नाम विख्यात है। वे साहित्य और कला के गौरव-स्तंभों मे गण्य-मान्य हैं। मैं उनसे उनके छात्र-जीवन से ही सुपरिचित हूँ। छपरा उनकी ननिहाल है ; इसलिए उनसे कुछ और ज्यादा अपनेपन का नाता है। उनकी काव्य-प्रतिभा जन्मजात है, अर्जित नही। उनमे अपने बचपन से ही काव्य के प्रति जागरूक रुचि है। वे चिकित्सक से पहले कवि हैं। विनयिता, सहिष्णुता, सहृदयता और उदारता उनकी निजी विशेषताएँ हैं जो अल्प-वार्तालाप की अवधि में ही किसी को अपनी ओर आकृष्ट कर लेती हैं। वे गृहस्थ हैं, विरागी भी ; क्रान्तिकारी हैं, शान्ति-दूत भी ; मूर्ति-पूजक हैं, निर्गुणोपासक भी ; वर्णाश्रम धर्म के विश्वासी हैं, जाति-प्रथा के घोर विरोधी भी ; चिकित्सक हैं, कवि-साहित्यकार भी।

वे राष्ट्रीयता के समर्थक हैं क्योंकि उनकी दृष्टि में जब तक कोई राष्ट्रीय नहीं बनेगा, अन्तर्राष्ट्रीय धर्म-पालक नहीं बन सकता। वस्तुतः राष्ट्रीयता अपराध नही है, अपराध है स्वार्थ-परता, संकीर्णता आदि।

उन्होंने अपने को चिकित्सा, साहित्य और लोकसेवा के लिए समर्पित किया है। उनकी मानवीयता ने उसकी विद्वत्ता, कलाकारिता, साहित्यिकता और चिकित्सा-प्रवीणता को पराभूत किया है। इस अर्थ में वे सबसे पहले मानव हैं और बाद में और कुछ। वे मानवता की साकार मूर्ति हैं। वे ऐसे धुन के धनी हैं, कर्मठ हैं, तपस्वी हैं, मनीषी हैं, उदार हैं जो सदियों मे उंगलियों पर परिगणित होते हैं। वे निरभिमान हैं किन्तु स्वाभिमान के सम्राट् हैं। उनके जीवन मे सन्तोष और शान्ति का उच्छल आवेग प्रवाहित होता है। उनमें यश की लिप्सा नहीं है किन्तु उनकी सत्कृतियाँ उन्हें सत्कीर्ति प्रदान कर देती हैं।

वे अपने नियमों के कठोर पालन-कर्त्ता हैं और विजय उनके निर्भयतापूर्ण पालन मे है। मैं १ जनवरी, १९९१ ई० को अपने दमा रोग की जाँच कराने को उनके यहाँ गया। उन्होंने बहुत-कुछ जाँच की। चार बज रहे थे। उन्होंने कहा—'अब एक बजे डेरे मे जाँच करूँगा।' मैंने उनसे निवेदन किया—'मैं मुजफ्फरनगर से बिना ओढ़ने-बिछौने के आया हूँ। कल आ जाऊँगा।' उनका उत्तर था—'मैं कल में विश्वास नहीं करता। आज सब काम करने हैं।' अस्पताल के कार्यों को समाप्त कर उन्होंने एक

रिक्शा मँगाया। हम दोनों चले। रास्ते में मैंने उन्हें पूछा—'डॉक्टर साहब, गाड़ी क्या हुई?' उन्होंने उत्तर दिया—'कुछ खराबी आ गयी थी। इसलिए उसे बनने को भेजा है।' हम वार्तालाप करते हुए उनके डेरे में पहुँचे। जो जाँच बाकी थी, उन्होंने पूरी की। जब मैं उनके डेरे से चलने लगा, उन्होंने अपनी 'मैं कहाँ हूँ?' नामक पुस्तक मुझे दी। इसमें आध्यात्मिक तत्त्वों का वैज्ञानिक विश्लेषण है। यह बहुप्रशंसित विवेचनात्मक मौलिक-दीर्घ निबन्ध है। मैंने उनकी कार्य-पद्धति और आचरणशीलता से अनुभव किया कि वे छोटा हो या बड़ा, जो जैसा हो, सबके साथ हिलमिलकर बातें करते हैं। उनके आचरण में स्वाभाविकता है और सादगी भी। वे 'अन्तःशाक्ता बहिःशाक्तः' नहीं हैं। वे आन्तर-बाह्य रूप में एक हैं। मैत्री-धर्म की सौन्दर्य-रक्षा में सदैव तत्पर उनका प्रेम-पूर्ण हृदय यह कभी नहीं चाहता कि उनके मन, वचन और कर्म को शत्रु-स्रष्टा की संज्ञा मिले। अपने चारों ओर सद्भाव, सौजन्य, शान्ति और सहिष्णुता का सुख-सम्पन्न वातावरण बनाये रखना और छोटे-बड़े सबके साथ समन्वित रूप में सहयोग और सहानुभूति का संचार करते रहना उनकी प्रशान्त मनोवृत्ति और नैष्ठिक एकता के द्योतक हैं। यही कारण है, उनके मित्रों और हितचिन्तकों की संख्या मैत्री की महत्ता को पार कर गयी है। मैत्री स्वयं स्यात् उतनी बड़ी नहीं है जितनी बड़ी उनकी मित्र-मण्डली है। मित्र भी कैसे-कैसे? एक-से-एक चुने हुए और जीवन-व्यापार के विभिन्न क्षेत्रों में लोकोपयोगी कार्य करनेवाले। उनकी उत्कृष्ट बुद्धि में इस मित्रत्व-विधायिनी शक्ति का बड़ा हाथ है।

विनम्रता-प्रदर्शन की चेष्टा का अभाव उन्हें कभी अविनयी, अशिष्ट या अमान्य बना दे, यह नहीं हो सकता। पूर्णतः अनौपचारिक ढंग से वे आपसे मिलेंगे और बातें करेंगे। उनके साथ व्यवहार पर चलते हुए आपको न किसी प्रकार का विस्मय होगा न क्षोभ। वे आपको जितने परिचित लगेंगे, उतने ही सुन्दर प्रतीत होंगे।

मनुष्य में जो सद्‌गुण होने चाहिए, उनमें पूर्ण मात्रा में विद्यमान हैं। स्वभावतः मृदुता उनमें जन्मजात है। उनके वार्तालाप में कोमलता का पैमाना छलकता रहता है। साहित्यकारों और कलाकारों के लिए वे वरदान हैं। वे प्रतिभाशाली और विविध व्यक्तित्व से पूर्ण व्यक्ति हैं। ऐसा व्यक्तित्व जिस व्यक्ति में समाता है, वह व्यक्ति स्तर से ऊँचा उठता है और संस्मरण का रूप धारण करता है। यह बात डॉ० साहब के जीवन से परिलक्षित होती है।

उनकी सरल प्रतिभा की उनमें बुभुक्षा नहीं है। वे निष्काम भाव से साहित्य-सेवा करते हैं, समाज और साहित्य की सेवा करते हैं। उनमें पद-लोलुपता की गन्ध तक नहीं है। वे निःस्पृह भाव से कर्तव्य भावना में लग-रूप करते हैं।

उनका सम्पूर्ण व्यक्तित्व उनके कार्यों के अनुरूप मनोहर, उद्बोधक और प्रेरणाप्रद है। वस्तुतः अपने कार्यों की भाँति उन्होंने अपने जीवन को महान् [illegible] कार्यों से प्रकाशित किया है। वे कैलास पर्वत की चोटी के समान उन्नत [illegible] हैं। लेकिन उनकी महत्ता उन्हें कारणों के बेड़ में जकड़ने को तैयार [illegible] उनका व्यक्तित्व साधारण जनता में है। १९६१ ई० में साहित्यकारों का

एक बहुत बड़ा जलूस पटना में निकला था जिसका नेतृत्व वे अशोक मेहता जी के साथ कर रहे थे। वे देश में समाजवाद लाना चाहते हैं। वे चाहते हैं कि अट्टालिकाओं के अगल-बगल में जो झोपड़ियाँ हैं, वे अट्टालिकाएँ हो जायें। वे यह नहीं चाहते कि जितनी अट्टालिकाएँ हैं, वे झोपड़ियों में परिणत हो जायें। वस्तुतः अट्टालिकाओं को भूमिसात् कर उन्हें झोपड़ियों के रूप में परिणत करने से हमारे देश का उत्थान नहीं हो सकता। हमारे देश का उत्थान तभी होगा जब हम अट्टालिकाओं को रहने दें और झोपड़ियों को अट्टालिकाओं का रूप दें। यह कार्य नवीन और प्राचीन विचार-धाराओं के समन्वय से होगा।

डॉ० साहब करुणावतार हैं। उनका मनुष्यत्व उनके पाण्डित्य, साहित्य-साधना और व्यक्तित्व से बहुत ऊँचा है। हृदय और मस्तिष्क के समन्वय को संस्कृति कहते हैं। यह संस्कृति उनमें कूट-कूटकर भरी हुई है। उनके लिए 'दिनकर' जी की ये पंक्तियाँ सार्थक नहीं हैं—

'बढ़ गया मस्तिष्क हो निःशेष,
छूट कर पीछे गया है रह हृदय का देश,
नर मनाता नित्य-नूतन बुद्धि का त्योहार,
प्राण में करते दुखी हो देवता चीत्कार।'

उनके हृदय और मस्तिष्क का विकास समान रूप में हुआ है। यही मैं कहना चाहूँगा, वे सुसंस्कृत व्यक्ति हैं। वे जिस रूप में अपने गृह में आचरते हैं उसी रूप में सभा में भी। यह विशेषता विरल व्यक्तित्व में परिलक्षित होती है और उनका व्यक्तित्व विरल है। जिस प्रकार हृदय और मस्तिष्क के समानुपातिक विकास पर सम्पूर्ण व्यक्तित्व का विकास निर्भर होता है, उसी प्रकार उनके व्यक्तित्व का विकास उनके सामाजिक और साहित्यिक जीवन पर अवलम्बित रहा है। जिस प्रकार हृदय और मस्तिष्क एक-दूसरे के पूरक हैं, उसी प्रकार उनके सामाजिक और साहित्यिक जीवन एक-दूसरे के पूरक रहे हैं। पूर्ण विश्वास के साथ निर्विवाद रूप में यह नहीं कहा जा सकता कि जन-सेवा के कँगूरे पर चढ़ने में साहित्य ने सीढ़ी का कार्य किया है या साहित्य के शिखर पर विराजमान होने में समाज-सेवा ने उनका मार्ग प्रशस्त किया है; लेकिन यह बात निःसंकोच कही जा सकती है कि उनके मस्तिष्क ने समाज-सेवा के क्षेत्र में आफतों और कठिनाइयों से जूझनेवाला उन्हें धैर्य प्रदान किया है और उनके हृदय ने उन्हें दुःखों को भुलानेवाली मस्ती दी है। उनके मस्तिष्क-तन्तु यदि समाज-सेवा में सक्रिय रहे तो उनके हृदय की वृत्तियाँ सहित्य में रमती रही हैं। वे यदि सत्य-प्रिय हैं तो इसका श्रेय उनके साहित्य को है और वे यदि कर्त्तव्यशील हैं तो इसका श्रेय उनकी समाज-सेवा को है।

उनका जन्म २० दिसम्बर, १६२० ई० को उत्तर-बिहार के 'विद्यापति नगर' से उत्तर और 'दलसिंह सराय' से दक्षिण 'गढ़ सिसैई' नामक ग्राम में एक लब्ध-प्रतिष्ठ जमींदार-कुल में हुआ था। चिकित्सा का विशेष प्रशिक्षण उन्होंने अमेरिका में प्राप्त किया। जब वे पटना मेडिकल कॉलेज की पढ़ाई समाप्त कर चुके, तब बिहार सरकार

से उनकी योग्यता, कर्मठता और विद्वता की वजह से उनकी नियुक्ति बेगूसराय में बड़े डॉक्टर के रूप में की। बेगूसराय में उनकी सुकीर्ति चतुर्दिक् व्याप्त हो गई। पुनः सरकार ने उन्हें पटना बुला लिया। सम्प्रति वे पटना मेडिकल कॉलेज एवं अस्पताल में हृदय-विभाग के अध्यक्ष हैं। उन्होंने साहित्य-सृष्टि के पक्ष में अनेक वैज्ञानिक निबन्ध लिखे हैं जो राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय चिकित्सा-विज्ञानियों द्वारा सराहे गए हैं। उन्होंने अपने व्यस्त जीवन से कुछ ऐसे अनमोल क्षण साहित्य को समर्पित किये हैं जो उन्हें अमर बनायेंगे। उनकी गद्य-पद्य-सम्बन्धी रचनाएं पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित होती रही हैं। उन्हें अपनी परिश्रमशीलता, अध्ययनशीलता और मेधाविता पर अगाध विश्वास है और उन्होंने अपनी सामाजिक, सांस्कृतिक और साहित्यिक गतिविधियों के द्वारा अपने व्यक्तित्व के शुद्ध स्वरूप का सन्तुलित परिचय दिया है। उनकी विशाल सहृदयता और प्रतिभा पर सम्पूर्ण देश को गौरव है। हमारी शुभ कामना है, वे शतायु हों और देश, समाज तथा राज्य की गौरव-वृद्धि करते रहें।

एक युग था जबकि छोटी-छोटी कहानी लिखने में स्व० पं० विनोदशंकर व्यास (बनारस) बाजी मारे हुए थे। विनोदशंकर की ४१ कहानियाँ जिसका प्रमाण हैं। डॉ० श्री श्रीनिवास जी भी इधर इतनी छोटी-छोटी कहानी लिखने लगे हैं जिसकी कोई हद नहीं। गागर में सागर भरते जा रहे हैं। उनकी एक कहानी यहाँ उद्धृत कर देना जरूरी है :

अपना अपना प्यार

खैराती अस्पताल में अपनी पत्नी सुगिया (उर्फ महुआ) को भर्ती कराकर *गोबिन लापता हो गया। मौत निकट, निकटतर, निकटतम आती चली जा रही थी।* गोबिन गया सो गया ही रह गया। खैराती अस्पताल में न दवा थी, न महुआ के पास एक अधेला। गोबिन अपने को रधिया पर न्योछावर कर चुका था। अपनी सुगिया, अपनी महुआ की अब कोई जरूरत उसे थी भी नहीं। सुगिया की अवश्यम्भावी मृत्यु के इन्तजार में इत्मीनान के साथ जा बैठा था। अस्पताल में न अपना पता छोड़ गया था, न सुगिया के पास कोई आशा। अकेली और निराश मरणासन्न महुआ'''

कुछ कहने को रह नहीं गया था।

न शिकवा, न शिकायत!

सम्पादकाचार्य श्री रसूलपुरी जी

श्री रामरीझन रसूलपुरी का जन्म रसूलपुर गाँव में (थाना कांटी, मुजफ्फरपुर) २ ज्येष्ठ १९०६ ई० को हुआ था। उनके पिता का नाम श्री देवनारायण ठाकुर (स्व०) है। रसूलपुरी जी का झुकाव बचपन से ही साहित्य की ओर रहा है। जब वे स्कूल में पढ़ते थे, कविता आदि लिखा करते थे और अपनी मित्र-मण्डली में सुनाते थे। एक समय था, जब कलकत्ते से निकलनेवाला साप्ताहिक 'हिन्दू पंच' भारत के घर-घर में जाता था और लोग उसे आदर से पढ़ते थे। इस 'हिन्दू पंच' में श्री रसूलपुरी जी की पहली कविता १९२७ ई० में छपी। उसके बाद भारत की सभी पत्र-पत्रिकाओं में उनकी रचनाएँ आदर के साथ छपने लगीं।

उनका जीवन अधिकांश में पत्रकार का जीवन रहा है। उन्होंने इस दिशा में सन्तोषजनक सफलता प्राप्त की है। वे कई पत्र-पत्रिकाओं का सम्पादन बड़ी योग्यता से कर चुके हैं जिनमें 'योगी', 'तिरहुत समाचार', 'राष्ट्रदूत', 'नन्हे मुन्ने' आदि उल्लेख्य हैं। आजकल वे 'उत्तर बिहार' के सम्पादक हैं। अभी 'उत्तर बिहार' ही एक ऐसा साप्ताहिक पत्र है जिसमें साहित्यकारों की चर्चा खासतौर पर रहती है। यही वजह है, यह साहित्य-जगत् में बहुचर्चित है।

श्री रसूलपुरी की लिखी प्रकाशित पुस्तकें ये हैं--(१) आर्य समाज जयन्ती स्मारक-ग्रंथ, (२) युग-पुरुष और युग-धर्म, (३) भारतीय संस्कृति की झलक, एवं (४) जगत् नाचता है। बहुत पुस्तकें अभी अप्रकाशित हैं।

रसूलपुरी जी सचमुच जनता के सेवक हैं। उनके व्यक्तित्व में प्राचीन आचार्यत्व की जो गरिमा है, वह विरल है। उनकी शिष्टता और शालीनता अत्यन्त दुर्लभ है। अपने किसी के प्रति भी अपार आदर-सद्भाव और स्नेहिल व्यवहार उनका प्रकृतिसिद्ध गुण है जो उनके व्यक्तित्व को महान् से भी महान् बनाता है। व्यक्तित्व के गांभीर्य ने जहाँ उनको अपने कर्तव्य के प्रति निष्ठावान् बनाया है वहाँ उत्तरदायित्व के सफल निर्वाह के लिए समर्थ भी। वे निस्पृहता, सहृदयता, दया, क्षमा और शान्ति की प्रतिमूर्ति हैं। उनकी सादगी और सरलता श्रद्धेय है। उनके आचार-विचार और रहन-सहन की यह सरलता मन, वचन और कर्म की एकता से उद्भूत है। उनकी प्रतिभा में अध्ययनशीलता का मणि-कांचन-योग है। जनता की सच्ची प्रशंसा पाने के लिए वे

कभी अपने ऊँचे आदर्श से नहीं गिरते। उनका साहित्यिक व्यक्तित्व उनके शब्दों की भाँति मनोहर, उद्बोधक और प्रेरणाप्रद है।

वे काम करने और काम चाहनेवाले व्यक्ति हैं। वे स्वयं बेहद परिश्रम करते हैं और चाहते हैं कि दूसरे भी वैसा ही करें। जो व्यक्ति स्वयं परिश्रमी होता है वह कभी यह पसन्द नहीं करता कि दूसरा व्यक्ति आलसी बना रहे या काम में टालमटोल करे। जिस कार्य से उनका सम्बन्ध रहता है, उसमें वे किसी भी प्रकार की अव्यवस्था नहीं रहने देते। जिस मनुष्य में कार्य-सम्पादन की सच्ची योग्यता दिखेगी, उसे वे अविलम्ब उठा लेंगे। कर्तव्य-क्षेत्र में अपने साहित्य-ज्ञान को वे कभी कुंठित नहीं होने देते।

उनकी तेजस्विता और नियम-निष्ठा दूसरों पर अपनी छाप छोड़े बिना नहीं रहती। उनके दैनिक कार्यक्रम से परिचित हर व्यक्ति बता सकता है कि वे अमुक समय में अमुक काम करते हैं। वे इस बात को गवारा नहीं कर सकते कि कोई चालाकी से या दबाव डालकर उनसे गलत काम करा ले। वे जितने ही अध्ययनशील और परिश्रमी हैं, उतने ही सुव्यवस्था के प्रेमी भी।

वे विद्वान्, सम्पादक, समालोचक, कवि और लेखक सब-कुछ हैं और वे जो हैं, वे सही हैं। मगर इन सबके बावजूद जो पहले आदमी न बना उसका सब-कुछ बनना बेकार है। दोष-गुण-मिश्रित मानव, प्रवंचनापूर्ण मानवेन्द्र से कहीं अच्छा है। रघुपति पहले मनुष्य हैं—मानव-सुलभ दुर्बलताएँ लिये हुए और मानवोचित उच्च गुणों से विभूषित। वे प्रेम के पक्के पुजारी हैं। वे प्रेम के स्मृति-चिह्नों को कलेजे से लगा रखते हैं, प्रेम की अश्रु-विनिर्मित प्रतिमा की नीरव उपासना करते हैं और सदा सम भाव से प्रेम-करुणा की रस-वृष्टि करते हैं। वे जिससे मिलेंगे, उसीके हो जायँगे। उनका हृदय प्रेम-पूर्ण बन्धुत्व-भावना का सीमाहीन समुद्र है। इसलिए उनकी त्याग-भावना भी असीम है।

वे आत्म-सम्मान के साथ-साथ निर्भीकता-भरी स्पष्टवादिता के क़ायल हैं। वे किसी चोटदार बात से छुई-मुई की तरह तुरत मुरझा भी जाते हैं और प्रेमपूर्ण बात से तुरत खिल भी सकते हैं। झूठे शिष्टाचार और खुशामद से कोई उनका कृपा-पात्र बन जाय, यह संभव नहीं। उनकी वास्तविक प्रसन्नता आप अपने उद्देश्य की सचाई प्रकट करके ही प्राप्त कर सकते हैं। उसके बाद नियम-निष्ठा के साथ कर्तव्य-पालन की पाबन्दी भी माननी पड़ेगी। केवल धन्यवाद देकर उनके उपकारों से आप उऋण नहीं हो सकते। आप कार्य-क्षेत्र में सच्चे सहयोगी बनकर उनकी मदद करें तभी आपके धन्यवाद का कोई अर्थ होगा।

हलचल से, हो-हल्ले से सदैव दूर रहनेवाला उनका स्वभाव विग्रह-वैराग्य में लिपटा हुआ है। आप उन्हें गालियाँ भी दीजियेगा तो वे बोलकर उनका जवाब कभी ~ । यदि गालियों का सम्बन्ध किसी साहित्यिक प्रसंग से होगा तो लिखकर वे कड़ी-से-कड़ी आलोचना कर सकते हैं। साहित्य के क्षेत्र में मनमानी करनेवालों ~ क्षमा नहीं कर सकते।

जिस सदाचार का, चरित्र-नीति का सम्बन्ध हृदय से न होकर सूखे सिद्धान्त से होगा, उसे वे नहीं अपना सकते। उसकी उपयोगिता पर उनका विश्वास जम नहीं सकता। मानव सुलभ गुण-दोष को सहृदयता की दृष्टि से देखनेवाला स्वाभाविक आचरण ही उनके लिए कोई महत्त्व रखता है। पाप और पुण्य की औसत निकालकर जिस सदाचार का निरूपण किया जायगा, वही उनकी दृष्टि में मंगलकारी है। उनके आदर्श पृथिवी पर दिखाई पड़नेवाले आदर्श हैं, आकाश के प्रकाश-गर्भ में अदृश्य रहनेवाले नहीं।

वे नैसर्गिक मनुष्य हैं; छल, प्रवचना, पाखण्ड और पाप को सरलता, प्रेम और पुण्य के आवरण में लपेटकर चलनेवाले मनुष्याभास नहीं। वे शान्त, सहिष्णु, सहृदय और सुखद हैं। उनका स्वभाव अतिशय मधुर और कोमल है। अपने धर्म और अपनी संस्कृति पर उनकी बड़ी आस्था है, लेकिन अपनी आस्था को अभिव्यक्त करने के लिए वे बनना नहीं जानते और जैसे हैं वैसे ही रहना उन्हें अच्छा लगता है।

o

सुहृद, उपकारी और सच्चे हिन्दी-सेवक हैं। उनके विचारो में सजावट है। उनकी लिखावट में मधुर-कोमल शब्द नग की तरह जटित रहते हैं। उनकी वेशभूषा बहुत सादा ढंग की है। उन्हें अपनी पोशाक की सुन्दरता और तड़क-भड़क की तनिक भी परवाह नहीं होती। वे विद्वान् सम्पादक, समालोचक और लेखक आदि जो हैं वह हैं ही किन्तु सबसे पहले वे मनुष्य हैं। कोई कुछ बन जाय, यदि मनुष्य नहीं बना तो सब-कुछ बनना बेकार है, और वे मनुष्य हैं। मानव-सुलभ दुर्बलताएँ उनमें भी हैं और वे मानवोचित उत्तम गुणों से विभूषित भी हैं।

उनका हृदय प्रेमपूर्ण बन्धुत्व-भावना का सीमाहीन समुद्र है। उनकी त्याग-वृत्ति भला कैसे सुन्दर न होगी? वे कौड़ी-कौड़ी जोड़कर धनवान् बन जायेंगे सही लेकिन अपने लिए नहीं, किसी लोकोपकारिणी संस्था के लिए। कर्त्तव्य-क्षेत्र में वे अपने दायित्व-ज्ञान को कभी कुंठित नहीं होने देते। जिस काम के लिए जो समय बँधा है, उसे ठीक समय पर वे करेंगे। समय की पाबन्दी उन्हें सबसे अधिक प्यारी है। समय की लापरवाही को वे राष्ट्र की एक भयंकर बीमारी मानते हैं और चाहते है कि हममें जो जितने बड़े हैं वे उतनी ही तत्परता से उसे दूर करें।

उनमें विद्वेष-बुद्धि का सर्वथा अभाव है। वे विनय और प्रेम की मूर्ति हैं। पत्रकार के नाते वे अच्छे-से-अच्छे को भले ही अयोग्य सिद्ध करें, मनुष्य के नाते वे सबको अपने से अधिक श्रेष्ठ मानते हैं। उनका ज्ञानार्जन उनकी संग्रह-सचय-वृत्ति का परिणाम है। उनका प्रेमपूर्ण हृदय मैत्री-धर्म की सौन्दर्य-रक्षा में तत्पर रहता है जो यह नहीं चाहता कि उनके मन, वचन या कर्म को शत्रुस्रष्टा की संज्ञा मिले। अपने चारों ओर सद्भावना, सौजन्य, शान्ति और सहिष्णुता का सुख-सम्पन्न वातावरण बनाये रखना एवं छोटे-बड़े सबके साथ हिल-मिलकर अपने कार्य-क्षेत्र में सहयोग और सहानुभूति का संचार करते रहना उनकी प्रशान्त मनोवृत्ति एवं ऐक्य-निष्ठा के द्योतक हैं। अपनी वैभवशालिनी लेखनी से वे पाठकों को इतना अधिक उपकृत करते रहते हैं कि उनमें किसी और वस्तु की अपेक्षा करना आशा का अनादर करना है। वे जो कुछ है और जैसे भी हैं, वही और वैसे ही बहुत सुन्दर और सुखद हैं तथा गौरव के शृंगार हैं। वे सर्वदा खुले मिजाज के व्यक्ति रहे हैं। उनमें किसी तरह का छिपाव नहीं है।

उनका जन्म सन् १९१७ ई० में मुंगेर जिले के अन्तर्गत बरौनी ग्राम में एक अतीव साधारण गरीब परिवार में हुआ था। लेकिन उन्होंने गरीबी को बाधारूप में स्वीकार नहीं किया। तेजस्वी और अपना निर्माण आप करनेवाले लोग धनी परिवारों में कभी-कभी पैदा होते हैं। भानु भाई उसी प्रकार बढ़े जिस प्रकार गरीब परिवार के नवयुवक अपना विकास करते हैं। बरौनी से उन्होंने अपर प्राइमरी पास की और तेघरा से मिडल परीक्षा तथा बेगूसराय से मैट्रिकुलेशन परीक्षा। वे पटना कॉलेज में प्रविष्ट हुए। आई० ए० की परीक्षा की बात आई। उनके पास युनिवर्सिटी फ़ी के लिए पूरे रुपये नहीं थे। भानु भाई श्री प्रफुल्लकुमार मिश्र (अब मुंगेर के प्रसिद्ध वकील) और श्री रामस्वरूपसिंह (अब प्राचार्य) के साथ मेरे पास आये। मैंने भानु भाई को अपने साथ लिया और कृपा बाबू के पास (श्री कृपानारायणसिंह, अब स्वर्गीय)

वे ऐसी कोई बात न कहते न लिखते हैं जो पहले नहीं कही गयी है। स
वे उसे इस प्रकार कहते या लिखते हैं जिस प्रकार किसी अन्य युग में न कही गय
न लिखी गयी हो। यही वे मौलिक चिन्तक हैं और विचारक हैं।

सन् १९४६ ई० की बात है। मेरे सम्मान में लोगों ने 'सुहृद्' नामक अभिन
ग्रन्थ निकाला जिसका द्वितीय सम्करण १९५६ ई० में छपा। उस समय भानु
'सर्चलाइट' में काम करते थे। उन्होंने मेरे बारे में लिखा था—"कविवर श्री सुहृ
बिहार की हस्तियों में से एक हैं। जब मैं यह कह रहा हूँ तो बिल्कुल अ
नहीं कर रहा हूँ। जितना मैंने सुहृद् जी को देखा है और उनके विषय में सु
उसके आधार पर मैं कह सकता हूँ कि संसार में उनके लिए कुछ भी असंभव नहीं
समय-समय पर इन्होंने कल्पना को भी प्रत्यक्ष कर दिखाया है। वे सच्चे अ
राजनीतिज्ञ हैं और हैं कवि। उनका हृदय हिमालय के समान उच्च और छोटे
के लिए उनकी सहानुभूति सिन्धु के समान गहरी है।

इस शुभ अवसर पर मेरी यह श्रद्धांजलि स्वीकृत हो।"

वस्तुतः अपने सहयोगियों के विषय में अपने से दूर रखकर कुछ कहना क
है। जिनपर मैंने दो-चार शब्द लिखे हैं उनका मूल्यांकन आनेवाली पीढ़ियाँ क
लेकिन उनके जीवन की कसौटी उनका अपना युग रहेगा। फुटबाल के खिलाड़िय
एक ही कर्म है पर यह जीतनेवाले के लिए सुखद और हारनेवाले के लिए
अनुभूतियों का कारण बन जाता है। जो हमें प्रिय है वह हमारे हित के परिवे
अपनी स्थिति या संस्कार हमें उदार बनने को बाध्य करता है। लेकिन मनुष्य का
बराबर विद्रोह करता है। अनुपकार करनेवालों का जवाब भी मैं उपकार से देत
मेरे मकान में 'सुहृद् नगर डाकघर' था। एक सज्जन इसमें किरानी बनकर आये
मेरा अपकार करने लगे। उस मकान से मुझे प्रति मास सौ रुपये मिलते थे। वे
एक अफसर से साँठ-गाँठ जोड़कर डाकघर दूसरे के मकान में ले गये जिसका कि
प्रतिमास था सवा सौ रुपये। मैंने अपना मकान सरकार को निःशुल्क लिख दि
चार-पाँच महीनों में ही 'सुहृद् नगर डाकघर' मेरे मकान में आ गया। वह मका
भारत सरकार का है।

सन् १९७० ई० की बात है। एक थे पोस्ट मास्टर। उनका घर भी दस
में था। डाकघर खुलने का समय था आठ बजे से बारह बजे और दो बजे से पाँच
तक। लेकिन वे समय पर नहीं आते थे। उन्हें आना चाहिए था आठ बजे सुब
लेकिन वे ग्यारह बजे के बाद ही आते थे और बारह बजे चले जाते थे। फिर ती
के बाद आते थे वे। इसलिए जनता को असुविधा होती थी। चन्द नवयुवक मेरे
आये और कहा—"चन्द बातें जो सच्ची हैं, हम लोग अखबार में भेजते हैं।
आपको तकलीफ तो नहीं होगी?" मैंने उन्हें कहा—'सरकार ने जनता के फायदे के लिए
यहाँ पोस्ट ऑफिस खोले हैं। मुझे तकलीफ क्यों होगी?' उन लोगों ने मार्
'प्रदीप' में छपवायी अपने नाम से। बेगूसराय से तहसीर कराया। डाकघर समस्तपुर
गया। लेकिन जिन नामों से समाचार छपा था उसी नाम से किसी निहित स्वा

राजा साहब राधिकारमणसिंह

गौर वर्ण, साधारणतः ऊँचा क़द, न बहुत दुबला न बहुत मोटा छरहरा बदन, बातों में आकर्षण और मिठास, आँखों में अपनापन और सरलता की मूर्ति—यही थे

व्यक्ति ने प्रतिवाद छपा दिया कि यह समाचार मेरा भेजा हुआ नहीं है, मेरे नाम से गलत छपा है। नवयुवकों की टोली मेरे पास फिर पहुँची। मैंने सारी बातें मानु भाई को पटना में कहीं और कहा—'अगर प्रतिवाद छापना था तब समाचार भेजनेवालों से पत्र लिखकर पूछ लेते। इस स्थिति मे मैंने भी ऐसा ही किया है।' यह सुनकर मानु भाई मुस्कराने लगे मानो उन्हे अपनी भूल का एहसास हुआ हो। जो व्यक्ति अपनी भूल महसूस कर लेता है उससे दुबारा भूल नही होती। और, भूल करना मानवीय प्रकृति है। अंग्रेजी मे कहा है—'*To err is human.*' जो भूल नहीं करता वह राक्षस है या देवता।

राजा साहब राधिकारमणसिंह

गौर वर्ण, साधारणतः ऊँचा क़द, न बहुत दुबला न बहुत मोटा छरहरा बदन, बातों में आकर्षण और मिठास, आँखों में अपनापन और सरलता की मूर्ति—यही थे राजा राधिकारमण प्रसादसिंह जी। वे लक्ष्मी और सरस्वती दोनों के लाडले थे। यह सौभाग्य विरलों को प्राप्त होता है।

उनसे मेरा परिचय इतना दीर्घकालीन था कि वहाँ तक मेरी स्मृतियाँ जाकर भी कुछ बताने में असमर्थ हैं। बिहार-विभूति डॉ० अनुग्रहनारायणसिंह जब जीवित थे, उनके यहाँ अक्सर राजा साहब से भेंट हो जाती थी और बीते युग की बीती बातें उनसे सुनने को मिलती थीं। बिहार-विभूति का जन्म-दिवस जब-जब मैं अठारह जून को पटना में मनाता था, राजा साहब को सभा में मुख्य अतिथि के रूप में मैं जरूर लाता था। वे डॉक्टर लक्ष्मीनारायण 'सुधांशु' के यहाँ भी अक्सर जाते थे। एक बार डॉ० सुधांशु के यहाँ अनेक अतिथि आये हुए थे। राजा साहब भी वहाँ पहुँचे। 'सुधांशु' जी ने सबसे राजा साहब का परिचय कराया और दिल्ली-दरबार की कहानी कहने के लिए उनसे आग्रह किया। बाहर से आये हुए साहित्यिक लोग उनके श्रीमुख से दिल्ली-दरबार की कहानी सुनकर मन्त्र-मुग्ध हो गये। जब राजा साहब जाने लगे तब और लोगों के साथ मैं भी उनकी मोटर तक गया था।

मैं एक बार उनके आत्मज श्री उदयराजसिंह से मिलने को उनके बोरिंग-रोडवाले मकान में गया। राजा साहब बाहर बैठे हुए थे। मैं उनके पास बैठ गया। उनके घर में जो पत्थर बिछे थे वे बहुत सफ़ेद और स्वच्छ थे। जब मैंने जिज्ञासा प्रकट की तब उन्होंने बताया कि ये पत्थर मैंने सूर्यपुरावाले मकान में लगाने को इटली से मँगाये थे किन्तु इन्हें यहीं लगवा दिया।

कवि ने लिखा है—

"जिसे बोलते-लिखते युग के युग आये हैं, चले गये हैं,
भी राज जिन्दगी के वे नहीं पुराने, रोज नये हैं,
लाखों ने, मैंने ने कहो कोई दुहराती बातें,
एक ही उनको दुनिया बारम्बार बतलाती जाती।"

यह सही है कि कोई साहित्यकार मौलिक नहीं होता। किन्तु भी अभिव्यक्तिगत मौलिकता होती है।

व्यक्ति ने प्रतिवाद छपा दिया कि यह समाचार मेरा भेजा हुआ नहीं है, मेरे नाम
गलत छपा है। नवयुवकों की टोली मेरे पास फिर पहुँची। मैंने सारी बातें भानु भाई
पटना में कहीं और कहा—'अगर प्रतिवाद छापना था तब समाचार भेजनेवालों से प
लिखकर पूछ लेते। इस स्थिति में मैंने भी ऐसा ही किया है।' यह सुनकर भानु भा
मुस्कराने लगे मानो उन्हें अपनी भूल का एहसास हुआ हो। जो व्यक्ति अपनी भू
महसूस कर लेता है उससे दुबारा भूल नहीं होती। और, भूल करना मानवीय प्रकृति है
अंग्रेजी में कहा है—'To err is human.' जो भूल नहीं करता वह राक्षस है य
देवता।

राजा साहब राधिकारमणसिंह

गौर वर्ण, साधारणतः ऊँचा कद, न बहुत दुबला न बहुत मोटा छरहरा बदन, बातों में आकर्षण और मिठास, आँखों में अपनापन और सरलता की मूर्ति—यही थे राजा राधिकारमण प्रसादसिंह जी। वे लक्ष्मी और सरस्वती दोनों के लाडले थे। यह सौभाग्य विरलों को प्राप्त होता है।

उनसे मेरा परिचय इतना दीर्घकालीन था कि वहाँ तक मेरी स्मृतियाँ जाकर भी कुछ बताने में असमर्थ हैं। बिहार-विभूति डॉ० अनुग्रहनारायणसिंह जब जीवित थे, उनके यहाँ अक्सर राजा साहब से भेंट हो जाती थी और बीते युग की बीती बातें उनसे सुनने को मिलती थीं। बिहार-विभूति का जन्म-दिवस जब-जब मैं अट्ठारह जून को पटना में मनाता था, राजा साहब को सभा में मुख्य अतिथि के रूप में मैं जरूर लाता था। वे डॉक्टर लक्ष्मीनारायण 'सुधांशु' के यहाँ भी अक्सर जाते थे। एक बार डॉ० सुधांशु के यहाँ अनेक अतिथि आये हुए थे। राजा साहब भी वहाँ पहुँचे। 'सुधांशु' जी ने सबसे राजा साहब का परिचय कराया और दिल्ली-दरबार की कहानी कहने के लिए उनसे आग्रह किया। बाहर से आये हुए साहित्यिक लोग उनके श्रीमुख से दिल्ली-दरबार की कहानी सुनकर मंत्र-मुग्ध हो गये। जब राजा साहब चलने लगे तब और लोगों के साथ मैं भी उनकी मोटर तक गया था।

मैं एक बार उनके आत्मज श्री उदयराजसिंह से मिलने को उनके बोरिंग-रोडवाले मकान में गया। राजा साहब बाहर बैठे हुए थे। मैं उनके पास बैठ गया। उनके घर में जो पत्थर बिछे थे वे बहुत सफ़ेद और स्वच्छ थे। जब मैंने जिज्ञासा प्रकट की तब उन्होंने बताया कि ये पत्थर मैंने सूर्यपुरावाले मकान में लगाने को इटली से मँगाये थे किन्तु इन्हें यहीं लगवा दिया।

कवि ने लिखा है—

> 'जिसे बोलते-लिखते युग के युग आये हैं, चले गये हैं,
> फिर भी राज जिन्दगी के ये नहीं पुराने, रोज नये हैं,
> कई तरीक़ों से, ढेरों से वही चीज दुहरायी जाती,
> और एक ही उजड़ी दुनिया बारम्बार बसायी जाती।"

इसका अर्थ यह नहीं है कि कोई साहित्यकार मौलिक नहीं होता। विषयगत अभिन्नता होते हुए भी अभिव्यक्तिगत मौलिकता होती है।

राजा साहब अपनी अभिव्यक्ति में अत्यन्त मौलिक थे।

किसी शायर ने कहा था—

"लीक लीक गाड़ी चलै, लीकै चलै कपूत।
लीक छाड़ि तीनों चलै शायर सिंह सपूत।"

यह उक्ति राजा राधिकारमण प्रसादसिंह जी के सम्बन्ध में अक्षरशः चरितार्थ होती है। वे हिन्दी के सपूत थे। वे दूसरों की राह पर नहीं चले। उन्होंने अपनी राह स्वयं बनायी थी। वे चाहे उपन्यास लिखते हों या कहानियाँ या जीवन-चरित्र या नाटक या संस्मरण या आत्मकथा, वे अपनी राह पर चलते थे। उनकी राह सब साहित्यकारों की राह से पृथक् थी। यह राह थी उनकी लासानी शैली। इस शैली में उनका व्यक्तित्व अर्जित है। इसमें उर्दू का चलतापन है, फारसी का चुलबुलापन है, संस्कृत की शक्तिमत्ता है, ओज है और बँगला का माधुर्य है तथा मनोहरता है। इसने उन्हें हिन्दी साहित्यकारों की शीर्ष पंक्ति में प्रतिष्ठित किया और उन्हें अमर कीर्ति दी। इसके पूर्व वे बँगला में लिखते थे और अंग्रेजी में भी। जब वे हिन्दी में प्रविष्ट हुए तब उन्होंने जो कुछ लिखा था उसकी शैली तत्सम शब्दों से भरी हुई थी क्योंकि उस-पर बँगला का प्रभाव स्पष्ट रूप में परिलक्षित होता था। जिन पाठकों ने उनका सम्पूर्ण साहित्य पढ़ा होगा, वे मेरे मत से सहमत होंगे।

राजा साहब ने अपनी जिस नयी शैली की खोज की उसका श्रेय महात्मा गांधी को है। राजा साहब की जिन्दगी का सफीना तीन धाराओं में बह रहा था। पहली धारा थी राजकाज और घर-गिरस्ती की, दूसरी धारा थी जिला बोर्ड के अध्यक्षीय कार्यों की और तीसरी धारा थी 'हरिजन सेवक संघ' के अध्यक्षीय उत्तर-दायित्व की। इन धाराओं में वे आपाद-मस्तक डूब गये थे किन्तु अकस्मात् उनका जन्मजात साहित्यकार जागा। उन्होंने 'हरिजन सेवक संघ' के अध्यक्षीय पद से मुक्ति चाही। उन्होंने इसके लिए गांधीजी से प्रार्थना की। गांधीजी ने उनकी प्रार्थना इस वचनबद्धता पर स्वीकार की कि 'मैं हिन्दुस्तानी में साहित्य रचूंगा।' राजाजी की भाषा हिन्दुस्तानी का उत्कृष्ट निदर्शन है।

वे गांधीवादी विचारधारा के पोषक थे। यही कारण था, उन्होंने 'गांधी टोपी' नामक उपन्यास और 'दरिद्र नारायण' नामक कहानी की रचना की थी। 'पूरब और पश्चिम' में उन्होंने गांधी-दर्शन की श्रेष्ठता सिद्ध की थी। वे अपने वर्ण्य विषयों की खोज में कल्पना के रथ पर आसीन नहीं होते थे। वे जिधर दृष्टि डालते थे, उधर उन्हें राह मिल जाती थी। उसकी कलम जादू की छड़ी थी। इससे वे यदि कोयले को छूते थे तो वह कंचन हो जाता था, काँच का स्पर्श करते थे तो वह हीरा हो जाता था और मिट्टी का स्पर्श करते थे तो वह मुक्ता हो जाती थी। इस जीवन्तता का कारण यह है कि वे जीवन के मात्र द्रष्टा नहीं थे, स्रष्टा भी थे। एक बार श्री महावीरप्रसाद के यहाँ कोई पारिवारिक उत्सव था। इसमें दो वेश्याएँ नाच रही थीं। उनमें एक का नाम बेला था जो हिन्दू थी। दूसरी का नाम था बिजली जो मुसलमान थी। नाच के बाद किसी ने उनसे परिहास में पूछा—"कहिए, कैसा चल रहा है आप लोगों का आज-

कल काम-काज ?" बिजली चमकी—"क्या बताऊँ हुजूर ! हमारा व्यापार तो छीन लिया इस सिनेमा ने । कम-से-कम पैसों में लोग परदे पर अच्छे-से-अच्छा नाच और गाना सुन लेते हैं । अब हमारी पूछ कहाँ ?" यह सुनकर राजा साहब ने व्यंग्य किया—"तो क्यों नहीं तुम भी यह धन्धा छोड देती ? शादी-वादी करके घर-गृहस्थी बसा लो, फिर गिला-शिकायत का मौका न रहेगा ।" व्यंग्य का उत्तर व्यंग्य से मिला—"हुजूर ठीक कहते हैं । मैं तो ठहरी मुसलमान, मैं तो शादी करके जिन्दगी बदल लूँगी, मेरी खुदा ठीक से निभा भी देगा । लेकिन यह बेला हिन्दू है । अगर यह शादी करना चाहे भी, तो आपका समाज इसे स्वीकार करेगा ? यह तो अगर अपने सारे पाप धो भी ले, तो भी इसे हिन्दू समाज पनाह न देगा ।" बात वस्तुतः ठीक थी । राजा साहब पर असर भी पड़ा—'बिजली बिल्कुल ठीक कहती है । बेला का राम कभी उसका सहायक नहीं हो सकता, बिजली का रहीम तो उसे अवश्य पार लगा देगा ।' इस कथानक पर 'राम-रहीम' नामक उपन्यास की सृष्टि हुई । इसके माध्यम से विधवा-दुर्दशा, पाप, हिन्दू धर्म की कट्टरता, ईसाई धर्म के मुख्य कारण और उद्देश्य, स्त्रियों के अन्धविश्वास, बाल-विवाह, पाश्चात्य शिक्षा का भारतीय जीवन पर प्रभाव, नारियों की स्वतन्त्रता, उच्च वर्गों के नैतिक पतन, राजा-नवाबों की जिन्दगी, वेश्यावृत्ति, हिन्दू-मुस्लिम समस्या, हिन्दू धर्म की अनुदारता, आदि पर उन्होंने सर्वांगीण प्रकाश डाला है । इसी प्रकार 'जानी-सुनी-देखी'-माला की जितनी पुस्तकें हैं उनमे वे बातें ही वर्णित हैं जो राजा साहब के जीवन मे घटी है ।

सबल भावनाओं के उच्छल आवेग को काव्य कहते हैं । इसकी उत्पत्ति शान्ति के क्षणों मे स्मृत आवेगो से होती है । यह सब बात राजा साहब की सभी रचनाओं के सम्बन्ध मे लागू होती है । उन्होंने जो जीवन जीया था उसका चित्रण ही उन्होंने साहित्य मे किया था । इस दृष्टि से वे जीवनवादी साहित्यकार थे । यहाँ उनके समकक्ष केवल श्री कन्हैयालाल मिश्र 'प्रभाकर' बैठ सकते हैं ।

राजा साहब के जीवन-दर्शन पर भारतीयता की छाप है । उनकी कथावस्तु व्यवस्थित है, कथोपकथन सजीव हैं और नाटकीयता की प्रचुरता है ।

उन्होंने यह उक्ति सार्थक की थी—

"जिन्दगी जिन्दादिली का नाम है,
मुर्दादिल खाक जिया करते हैं !"

उनके सामने मनहूमियत फटकने नहीं पाती थी । यही कारण था, वे सर्वप्रिय थे । वे किसी का दिल दुखाना नहीं जानते थे । उनमे बालक का-सा सारल्य था । यह सारल्य कलुष-रहित था । वे अतिमानव थे । उनके निधन से हिन्दी की जो क्षति हुई है, उसकी पूर्ति अपूरणीय है ।

❁

श्री हेमवतीनन्दन बहुगुणा

मँझोला क़द, गौर वर्ण, भरा शरीर, दिव्य मुखमण्डल पर कान्ति, प्रकृतिगत सरलता और सात्विकता—ये हैं भारत सरकार के संचार-मंत्री श्री हेमवतीनन्दन बहुगुणा। उनकी सौम्य मूर्ति मिलने-जुलनेवालों के हृदय में बस जाती है। वे अत्यन्त मिलनसार हैं। एक बार जो उनसे मिलता है, मन-मुग्ध हो जाता है। वे मिष्टभाषी हैं।

मैं उन्हें कब से जानता हूँ, इस सीधे प्रश्न का सीधा उत्तर आज तक नहीं बन पड़ा है। प्रश्न के साथ ही मेरी स्मृति एक धूमिल अतीत-पृष्ठ पर उँगली रखती है जिसपर न वर्ष-तिथि आदि की रेखाएँ हैं न परिस्थितियों के रंग। उनकी दृष्टि में वही रहता है जो उनके हृदय में, और हृदय में वही रहता है जो वचन में। हम उनके विचारों से सहमत हों या असहमत, परन्तु उनके सम्बन्ध में किसी भ्रम या उलझन में नहीं पड़ सकते। अपने को बड़ा बनाने के लिए दूसरों को छोटा प्रमाणित करने की दुर्बलता उनमें नहीं है। जीवन में कुछ आदान और कुछ निर्माण उनके साथ चलते हैं। पुरातन संस्कारों का घेरा उन्हें वंश-परम्परा से मिला है पर उसमें नये आलोक को लानेवाले झरोखों का निर्माण उनका अपना है। ऋग्वेद के इस विचार को उन्होंने आत्मसात् कर लिया है—'आनो भद्राः क्रतवो यन्तु विश्वतः'—अर्थात् हमारे पास प्रत्येक दिशा से सद्विचार आयें।

साधारण रहन-सहन उनकी स्वार्जित सम्पत्ति है। आतिथ्य-दृष्टि से उनमें वही पुरातन संस्कार हैं जो ग्रामीण लोगों में रहते हैं। उनका अन्तरंग ऐसा है जो हिमालय के सदृश अडिग और गंगा के सदृश निर्माता चरित्र का निर्माण करता है। इस अन्तरंग में भारतीय संस्कृति की भावना का समुद्र है। वे उन व्यक्तियों में हैं जिनका सारा जीवन किसी-न-किसी सार्वजनिक कार्य और सेवा में व्यतीत हुआ है। उनका व्यक्तित्व आकर्षक है। उनका स्वभाव मृदु है और व्यवहार भी। उनके व्यवहार में कृत्रिमता नहीं लक्षित होती और उदारता झलकती है। उनकी उदारता का मैं ... ।

... सीढ़ी पर चढ़कर सीढ़ी को ठुकराना और स्वयं किसी उच्च स्थान ... बड़ों की बड़ाई स्वीकारने में संकोच करना—यह आजकल सर्वत्र दृष्टि- ... है। बहुगुणाजी इस दुर्बलता से परे हैं। इसका कारण यह है कि जो महान् ... नी महत्ता नहीं छोड़ते। महत्ता उनमें कूट-कूटकर भरी है। उनमें अथक

कार्य-शक्ति है जो अविस्मरणीय है। इस युग के इतिहास में उनका नाम स्वर्णाक्षरों से अंकित होगा। उनका हृदय संवेदनशील है जो किसी भी अन्याय, अत्याचार, पीड़ित के प्रति द्रवीभूत हो उठता है; कला-साहित्य-सेवकों तथा सहृदय न्यायपंथियों के निमित्त कुसुम-सम कोमल है और समाज-विरोधी भ्रष्टाचारियों के लिए वज्रतुल्य कठोर। उनमें अपनी रुचियाँ हैं, अपना दृष्टिकोण है और अपने विचार हैं। उनमें राजनीतिज्ञ की दृष्टि है और साहित्यिक की भी। वे ऐसे उदार हृदय के हैं कि उनसे किसी की हानि नहीं होती; सबका लाभ होता है। वे हरदिल-अजीज हैं। जब वे संचार-विभाग के मंत्री की कुर्सी पर आसीन होते हैं, उनकी मृदुता में दृढ़ता पर्याप्त मात्रा में आ जाती है। व्यक्तियों के निकट सम्पर्क में आने और उन्हें अपने व्यवहार से निकट खींचने की जैसी क्षमता उनमें है वह विरल है। यह ईश्वरीय देन है जिसे हम मानवीय गुण कहते हैं।

राजनैतिक जीवन में धवलगिरि की धवल चोटी के समान स्वच्छ और पवित्र हैं। लेकिन उनका दिमाग बादलों में नहीं, साधारण जनता में है। अपनी कर्तव्य-चेष्टा के गौरवपूर्ण महत्त्व के प्रति इतनी आत्म-विरक्ति रखनेवाले वे कर्मयोगी हमारे लुप्त अतीत के उज्ज्वल वैभव हैं जिसको विकीर्ण करते हुए किसी दिन हमारे ब्राह्मणत्व ने सम्पूर्ण भूमण्डल की सभ्यता-संस्कृति पर विजय पायी थी। हृदय की सचाई—जीवन की अनुभूति उन्हें जो कुछ कहेगी, वे वही करेंगे।

उनके निकट सत्य सदैव सत्य है। वे कर्मयोगी की तरह केवल कर्म का महत्त्व जानते हैं, कर्म-फल का नहीं। वे सबसे पहले मनुष्य हैं। कोई कुछ बन जाय, यदि मनुष्य नहीं बना तो सब-कुछ बेकार है। गुण-दोष-मिश्रित मानव प्रवंचनापूर्ण मानवेन्द्र से कहीं अच्छा है। बहुगुणाजी में मानव सुलभ दुर्बलताएँ हैं और मानवोचित उत्तम गुण भी। उनका हृदय प्रेमपूर्ण बन्धुत्व-भावना का सीमाहीन समुद्र है। उनकी त्यागवृत्ति सुन्दर है। जिस कार्य से उनका सम्बन्ध रहता है उसमें वे अव्यवस्था नहीं रहने देते। कर्तव्य-क्षेत्र में वे अपने दायित्व-ज्ञान को कभी कुंठित नहीं होने देते। जिस काम के लिए जो समय बँधा है, वे उसे उसी समय करेंगे। समय की पाबन्दी उन्हें इतनी प्यारी है कि इससे उदासीन रहनेवाला उनके रोष का शिकार सहज रूप में हो जाता है। वे समय की लापरवाही को राष्ट्र की एक भयंकर बीमारी मानते हैं और सच्चे हृदय से चाहते हैं कि हममें जो जितने बड़े हैं वे उतनी ही तत्परता के साथ इसे दूर करने की चेष्टा करें। वे जैसे ईमानदार स्वभाव के हैं वैसे ही ईमानदारी के उनके सब काम होते हैं। वे स्वयं स्वाभिमान और शान से रहते हैं तो अपनी अधीनस्थ संस्थाओं को भी शानदार बनाये रखते हैं। उनमें व्यक्तित्वगत सौम्यता है। जनता में उनके नाम की प्रभविष्णुता है क्योंकि उनके समान ईमानदार और लगनशील व्यक्ति देश में विरल हैं। वे स्वाभाविक मनुष्य हैं; छल, प्रवंचना, पाखण्ड और पाप को सरलता, प्रेम और पुण्य के आवरण में लपेटकर चलनेवाले मनुष्यनाम नहीं। वे शान्त, सहिष्णु और मुखर हैं। उनकी प्रकृति में अतिशय माधुर्य है और अतिशय कोमलता भी। अपने धर्म,

अपनी संस्कृति पर उनमें बड़ी आस्था है किन्तु इस आस्था को अभिव्यक्त करने में वे बनना नहीं जानते। वे जैसे हैं वैसे ही बने रहना उन्हें अच्छा लगता है।

सब तरह के गुणों से भरे रहने पर भी महत्त्वता-प्रदर्शन का रोग उनमें नहीं है, न आलस्य के अभिशाप को अपना पाँव फैलाने देते हैं। वे निश्चित गति से अपने कर्ममय जीवन-पथ पर अविराम और अविरोध चलते रहते हैं। विश्राम की सुविधाएँ बुलाती रह जाती हैं किन्तु परिश्रम और प्रेरणाओं का साथ वे कभी नहीं छोड़ते। बड़प्पन उन्हें ऊपर उछालता रहा है और विनयशीलता उन्हें कभी नीचे नहीं गिरने देती। विभूति और पद के प्रकाश में वे खिले रहते हैं और अनुभूति की आभा में सोये रहते हैं। वे हमारे साहित्याकाश को अपनी जिस साधना और पर्यटन की ज्योति से अलंकृत कर रहे हैं वह चिरन्तनता के उल्लास में सदैव मुस्कराती रहेगी।

उनका ज्ञानार्जन उनकी संचय-वृत्ति का परिणाम है। उनका व्यक्तित्व आडम्बर-शून्य है। वे निष्कपट और निरभिमान हैं। मिलने-जुलनेवालों से वे कभी उकताते नहीं। वे अतिथि को अपने गृह का देवता मानते हैं—यह पुराने संस्कार का फल है। छोटा-बड़ा जो उनके पास पहुँचता है, वे उसे अपना लेते हैं। उनकी वाणी की शक्ति हमारे अन्तस्तल की समस्त भौगोलिक आकांक्षाओं को उद्वेलित कर हमें इस योग्य बनाती है कि हम गंभीरतापूर्वक अपनी समस्याओं पर विचार कर सकें।

अपने व्यक्तित्व के प्रति औरों के हृदय में आस्था उत्पन्न करने का विश्वास और विश्वास जगाये रखने की उनमें जो क्षमता है वह विरल है। मैत्री-धर्म की सौन्दर्य-रक्षा में सदैव तत्पर उनका प्रेम-पूर्ण हृदय कभी नहीं चाहता कि उनके मन, वचन या कर्म को शत्रु-स्रष्टा की संज्ञा मिले। अपने चारों ओर सद्भाव, सौजन्य, शान्ति और सहिष्णुता का सुख-सम्पन्न वातावरण बनाये रखना, छोटे-बड़े सबके साथ हिल-मिल-कर अपने कार्य-क्षेत्र में सहयोग और सहानुभूति का संचार करते रहना उनकी प्रशस्त मनोवृत्ति और ऐक्यनिष्ठा का द्योतक है। वे जो कुछ भी हैं, जैसे हैं, वही और वैसे ही बहुत सुन्दर और सुखद हैं तथा हमारे गौरव के शृङ्गार हैं।

जिनके पास इतनी बड़ी शक्तियाँ हैं उनके पास लोग आयेंगे ही और वे उनसे मिलेंगे भी। उनकी मिलनसारिता मन में बराबर मिलते रहने का चाव उत्पन्न करती है और चाव को मधुर भावों से भरती है। उनकी प्रकृति, भाषा, भाव और वेश की सादगी जीवन के उस सामञ्जस्य की अभिव्यक्ति है जो मन, वचन और कर्म की एकता से प्राप्त होता है। जिस बात को वे पूरी सचाई के साथ अनुभव करते हैं वही कहते हैं और उसी के अनुसार कार्य करने की चेष्टा करते हैं। यही कारण है, उनके कहने का असर पड़ता है।

उनमें प्रतिभा और परिश्रम की समन्वित शक्ति का अधिवास है। उनका व्यक्तित्व लुभावना है जो मनुष्यता के निखरे हुए स्वाभाविक सौन्दर्य का साक्षात्कार कराता है। उनका प्रत्येक व्यवहार उनके निःस्वार्थ एवं निःस्पृह प्रेम का द्योतक है। परहित में संलग्न उनका हृदय उच्च भावनाओं और मंगलकामनाओं से पूर्ण है। वे उच्च कोटि के साहित्यिक हैं और दार्शनिक भी। उन्होंने भारत की कीर्ति-पताका

देश में फहरायी है और देश के बाहर भी। उनके लिखने की शैली बहुत अच्छी है। उनकी भाषा बोलचाल की और सरल है। उसे अनपढ़ भी अपने ढंग से समझ लेता है। वे भाषण-कला में भी बेजोड़ हैं। वे जब भाषण करते हैं तब ऐसा जान पड़ता है मानो किसी विश्व-कोश को मधुर भाषण-शक्ति मिल गयी हो। उनमें दो महान् गुणों का सम्मिश्रण है—कभी न बुझनेवाला आशावाद और कभी न विकल होनेवाला बल। वे शब्दों का प्रयोग सावधानतापूर्वक करते हैं। उनके शब्दों में उनका हृदय झलकता है। वे अपनी वस्तुएँ कलात्मक ढंग से रखते हैं। यह उनकी कला-प्रियता का परिचायक है।

भारतीय राजनीति ने उनके जैसा द्रष्टा पाया है जो भविष्य को पहचानते हैं, जो आगे की सोचते हैं और राजनैतिक दलगत भेदों से ऊपर उठकर देशहित के लिए नैतिकता और आदर्श पर आधारित राष्ट्रीय चरित्र-निर्माण के गठन पर जोर देते हैं। उनकी उपमाएँ, रूपक और दृष्टान्त जितने प्रभावशाली होते हैं उतने ही मौलिक भी। वे विरक्ति के हिमालय पर स्थित हैं। उन्होंने लोभ के ज्वालामुखी पर कभी हाथ नहीं रखा। वे भीतर से तत्त्व-ज्ञानी हैं। वे जो कुछ करते हैं, तन-मन से। समुद्रवत् विशाल हृदय से वे अपने देश के छोटे-बड़े सभी प्रतिभावान् व्यक्तियों को अपनाते हैं और उनकी सहायता करते हैं।

विगत २ अप्रैल, १९७२ ई० को श्री अरविन्दकुमार 'अरविन्द' के साथ मैं दिल्ली गया था। वस्त्र आदि बदलकर हम टहलने को निकले। चचल मेरे लिए दूध लाने को गया था। कुछ देर में लौटा। श्री अरविन्द बहुत विलम्ब से लौटे। ३ अप्रैल '७२ तक मैं कई जगह गया। ५ अप्रैल, '७२ की सुबह स्नान-पूजा से निवृत्त होकर मैं अरविन्द के साथ जगजीवन बाबू के यहाँ गया। उस दिन उनका जन्मदिवस था—पैंसठवें वर्ष में उन्होंने प्रवेश किया है। भारत के कोने-कोने से उस अवसर पर लोग आये थे। राजधानी के सब लोग आये थे। मैं पण्डाल में बैठा था अरविन्द के साथ। कुछ दूरी पर श्री वाल्मीकि चौधरी एम० पी० और भारत के संचार-मन्त्री श्री हेमवती-नन्दन बहुगुणा खड़े होकर आपस में बातें कर रहे थे। सुहृद्‌नगर से प्रस्थान के पूर्व साप्ताहिक 'हिन्दुस्तान' में श्री बहुगुणाजी का एक बहुत सुन्दर लेख आद्योपान्त पढ़ चुका था तथा उनको और भारतरत्न श्रीमती इन्दिरा गांधी को एक-एक पत्र लिख दिये थे। वाल्मीकि बाबू ने मुझे बुलाया। मैं उन लोगों के पास चला गया। बातें होने लगीं। उसी समय आदरणीय बन्धु जगजीवन बाबू भीतर से आये और अपने निश्चित स्थान पर बैठकर पूजा-पाठ में संलग्न हो गये। मैं वहाँ गया। बहुत भीड़ थी। सबके बाद के बाद मैं डेरा चला गया। ६ बजे श्री रफी अहमद किदवई रोड पर 'मावलंकर नेशनल भवन' में जन-सभा थी। हम लोग समय से पूर्व भवन के भीतर गये। भवन वातानुकूलित है। मैं बैठने में असमर्थ हो गया। मैं बाहर चला आया। भवन में तिल रखने की जगह न थी। जगजीवन बाबू आये। मुझे बाहर देखकर उन्होंने पूछा—"रउआ बाहर काहे बानी ?" मैंने उन्हें कहा—'आवत बानी।' सभा आरम्भ हुई। मैं भीतर गया और मंच पर बैठ गया। सभा समाप्ति के बाद मैं बाहर आया। श्री

बहुगुणाजी से भेंट हुई। वे मुझे अपने साथ ६ गयगीना रोड स्थित अपने डेरे में ले गये। हम लोग कमरे में गये। कमरे में हर टेबुल पर भारत की हर भाषा की साप्ताहिक, दैनिक और मासिक पत्रिकाएँ थीं। कमरे की सभी चीजें करीने से सजी हुई थीं। कमरे में न व्यर्थ तिनका था न छत पर मकड़े का जाल। छोटी जगह में सुरुचि, सौन्दर्य और परिमार्जित सौष्ठव का उत्कृष्टतरीय संगठन था। हृदय हुलास और परितृप्ति से भर उठा। घण्टों बैठने के बाद मैंने डेरे पर लौटने की इच्छा प्रकट की। उन्होंने गाड़ी मँगवायी और जहाँ मैं ठहरा था उन्होंने मुझे वहाँ पहुँचा दिया। श्री बहुगुणाजी के चेहरे पर एक अद्भुत गरिमामय आकर्षण था और मुस्कानों में शिशु-सुलभ सरलता। आकृति एक दिव्य ज्योति से अलङ्कृत थी। जब तक मैं वहाँ बैठा और देखा, मैंने उन्हें निरभिमान होते हुए भी स्वाभिमानी और सन्तोष के साथ मस्ती में पाया। उनके रहन-सहन और प्रकृति में आत्मीयता भरी थी। वार्ता-क्रम में उन्होंने कहा था—'कार्य ही मुख्य है, जीवन तो चलायमान है, इसलिए इस बात पर ध्यान रखना चाहिए कि दिन हमेशा एक-से नहीं होते, ईमानदारी और सज्जनता फलती है।'

वे संचार-विभाग के राज्य-मंत्री २ मई, १९७१ ई० को हुए। उनका जन्म उत्तर प्रदेश के गढ़वाल जिले के बुगानी गाँव में २५ अप्रैल, १९२१ को हुआ था। उन्होंने इलाहाबाद विश्वविद्यालय से स्नातक परीक्षा पास की। छात्र-जीवन में वे वाद-विवाद और अन्य आयोजनों में दिल खोलकर भाग लेते थे। १९३६ ई० से १९४२ ई० तक वे छात्र-आन्दोलन के अग्रणी रहे। वे 'उत्तर प्रदेश छात्र फ़ेडरेशन' के एक पदाधिकारी थे। वे विश्वविद्यालय-जीवन में श्री लालबहादुर शास्त्री के सम्पर्क में आये और स्वराज्य-भवन के कार्यक्रम में भाग लेने लगे।

उन्होंने १९४२ ई० के 'भारत छोड़ो आन्दोलन' में प्रमुख रूप से भाग लिया। वे 'इलाहाबाद विश्वविद्यालय यूनियन' के पहले डिक्टेटर नियुक्त किये गए थे। उत्तर-प्रदेश और दिल्ली की सरकारों ने उनकी गिरफ्तारी के लिए पाँच-पाँच हजार रुपये के इनाम घोषित किये थे। वे ४ फ़रवरी, १९४३ ई० को दिल्ली में जामा मस्जिद के पास गिरफ्तार किये गए थे। कारामुक्त होने के बाद वे मजदूर-आन्दोलन में प्रमुख भाग लेने लगे। वे अनेक मजदूर-संगठनों के अध्यक्ष या मंत्री निर्वाचित हुए। वे 'उत्तर प्रदेश बिजली कर्मचारी संघ' के अध्यक्ष, 'भारतीय सुरक्षा कार्यकर्ता संघ' के उपाध्यक्ष और इंटक के एक प्रभावशाली सदस्य रहे। वे 'उत्तर प्रदेश कांग्रेस कमिटी' और 'अखिल भारतीय कांग्रेस कमिटी' के क्रमशः १९५२ और १९५७ ई० से सदस्य रहे थे। वे 'उत्तर प्रदेश कांग्रेस कमिटी' के मंत्री थे १९६३ से १९६९ ई० तक। उन्होंने हिमाचल-प्रदेश में पहले चुनाव का संचालन किया। वे १९६९ ई० में 'अखिल भारतीय कांग्रेस कमिटी' के महामंत्री निर्वाचित हुए जिस पद पर वे लोकसभा के सदस्य होने के पूर्व तक रहे। वे १९५२ ई० से १९६९ ई० तक 'उत्तर प्रदेश विधान सभा' के सदस्य रहे। डॉ० सम्पूर्णानन्द के नेतृत्व में बने मंत्रिमण्डल में वे संसदीय सचिव थे। वे १९५८ ई० में 'श्रम और उद्योग मंत्रालय' के उपमंत्री बनाये गये। वे वित्त एवं परिवहन-मंत्री भी थे। उन्होंने इंगलैण्ड, जर्मनी, फ्रांस, इटली, मिस्र आदि

देशों की यात्रा की। उनका मनोरंजन है बागवानी। उनकी पत्नी श्रीमती कमल बहुगुणा 'इलाहाबाद जिला कांग्रेस कमिटी' की अध्यक्षा हैं। उनका दाम्पतिक रू अभिनन्दनीय है।

आपने अपनी कर्मठता, व्यवहार-कुशलता और विद्वत्ता से संचार-विभाग के सरिता को मोड़ा है। भारत की जनता में एक नई रोशनी पैदा कर दी है।

इतिहास परख नूतन विधान
पन्ने समेट ले पुराचीन।
तुमने क़लम उठाई है
लिखने को कुछ गाथा नवीन॥

जाइएगा ?' 'मैंने कहा—मैं तो देख आया हूँ, लेकिन वे लोग कहेंगे तो चला जाऊँगा।' दूसरे दिन श्री हनुमनतैया जी ने गाड़ी मेरे पास भेज दी। मैं मित्रों के साथ मैसूर गया। वहाँ दूसरे दिन श्री महावीर त्यागी से भेंट हुई। वे उस समय भारत सरकार के अर्थ-मंत्री थे।

श्री के० हनुमनतैया का अन्तरंग उस प्रकार है जो हिमालय के सदृश अडिग और गंगा के सदृश निर्मल चरित्र का निर्माण करता है। कर्मठता, त्याग और तपस्या की त्रिवेणी ने उनके व्यक्तित्व को आकर्षक और दर्शनीय बना दिया है। राजनैतिक क्षेत्रों में अनेक पदों पर वे रहे पर उन्हें कभी मद नहीं हुआ। मनुष्यता उनमें कूट-कूट-कर भरी हुई है। वे सबसे पहले मनुष्य हैं और बाद में कांग्रेस-नेता या मुख्य मंत्री या रेल-मंत्री हैं। सब-कुछ होते हुए भी वे आपसी सहृदयता बराबर बनाये रखते हैं और आपस में कटुता नहीं आने देते। वे बहुत व्यवहार-कुशल हैं और हैं मृदुभाषी। उनसे मुझे मिलने का सौभाग्य १९५२ ई० में प्राप्त हुआ था। इतने दिनों के बाद भी मैं उन्हें भूल नहीं सका। यह है उनकी व्यवहार-कुशलता। उनकी आकृति बहुत आकर्षक है। मौसम के अनुसार वे अपना कपड़ा भी बदलते हैं। मेरा खयाल है, वे विचारक के साथ-साथ कर्मठ भी हैं। संसार के साथ-साथ राजनीति भी परिवर्तनशील है। राजनीति में रहनेवाले व्यक्ति का परिवर्तन होता रहता है, लेकिन जो कर्मठ व्यक्ति होता है वह परिवर्तन पर ध्यान न देकर अपने कार्य में लगन के साथ लगा रहता है तथा अपनी कर्मठता और व्यवहार-कुशलता से परिवर्तित स्थिति की परवाह किये बिना आगे बढ़ता है। श्री के० हनुमनतैया भी वैसे ही व्यक्ति हैं। वे छात्र-जीवन में भी सार्वजनिक कार्यों में भाग लेते थे, इसलिए उनका यश पहले भी फैल चुका था पूरी मात्रा में। राष्ट्रीय आन्दोलन में उनका नाम बिजली की तरह मैसूर प्रान्त में फैल गया था।

सामाजिक कार्यकर्त्ता के लिये जिन गुणों की अपेक्षा है, वे गुण उनमें पर्याप्त मात्रा में हैं। जनता की सस्ती प्रशंसा पाने को वे अपने आदर्शों से कभी नहीं डिगे। अपने सिद्धान्तों की रक्षा के लिये उन्होंने अधिकाधिक कठिनाइयों और विरोधों का सहर्ष सामना किया। सार्वजनिक क्षेत्र में प्रविष्ट होकर उन्होंने राष्ट्र-निर्माण के सभी कार्यों में योग किया। जनमात्र का आर्थिक धरातल ऊँचा उठाने की उन्होंने बराबर उद्घोषणा की है। उन्होंने अपने संघर्षों और विषम साहसों से कभी भी ऐसा काम नहीं किया जो अप्रिय हो। उनमें यह विशिष्ट गुण है कि वे जिस संस्था या व्यक्ति के साथ कार्य करते हैं उसका साथ तन-मन-धन से देते हैं। वे स्वतन्त्र रूप में विचारकर कार्य निश्चित करते हैं। वे जिसे ठीक समझते हैं, उसे विरोधों की प्रबल आँधियों का सामना करते हुए भी करते हैं। उनका दृष्टिकोण व्यापक है। वे प्रत्येक कार्य को राष्ट्रीय हित की कसौटी पर रखकर करते हैं। उनका विचार है, धन का बंटवारा तभी होना चाहिये जब देश में बहुत धन पैदा कर लिया जाय। समाजवाद के बारे बतानेवाले बहुत लोग हैं जो चाहते हैं कि महल की बगल में अगर झोंपड़ी है तो महल को तोड़ दिया जाय और झोंपड़ी को महल बनाया जाय। लेकिन उनका कहना है कि महल को ज्यों-का-त्यों रहने दिया जाय और जितनी झोंपड़ियाँ हैं सबको महल बना

स्थित करना। यह तभी होगा जब देश में पर्याप्त धन हो। इसके अभाव में देश में समाज-
कल्याण नहीं हो सकता।

श्री हनुमन्तैया अपने कर्तव्य का पालन निष्काम भाव से करते हैं। उनका मत है कि हमारे देश में सार्वजनिक कार्यकर्ताओं को पुरस्कार कम मिलता है और उन्हें वैमनस्य और विरोध का ही अधिक सामना करना पड़ता है। उन्हें सन्तोष है कि वे जो भी कार्य करते हैं उसमें उनकी अन्तरात्मा का आदेश रहता है। वास्तविक सन्तोष अपनी अन्तरात्मा के आदेश-पालन में ही है। उनकी बौद्धिक तीक्ष्णता, योग्यता, दिल की सफाई और देश-प्रेम ने उनके मित्रों और हितचिन्तकों के दिल में जगह बना ली है। आत्मबल की दृढ़ता के साथ उनकी नम्रता, कोमलता और सरसता ने उनका साथ कभी नहीं छोड़ा।

वे शिक्षा, संस्कृति और कला के संगम हैं। उनकी मान्यता है कि जीवन धर्म से अलग होकर नीचे गिरता है और धर्म से मिलकर ऊपर उठता है। उच्चादर्शों की प्राप्ति उनके जीवन का लक्ष्य है। उनके दीप्त मुख-मण्डल पर आध्यात्मिक कान्ति है जो प्रेरणा और सहायता प्रदान करती है। वे अत्यन्त उदार और क्षमाशील हैं। विश्वास की दिव्य ज्योति उनके हृदय में अखण्ड रूप में जलती रहती है। उनकी कार्यशीलता का लोहा सब मानते हैं। उनकी प्रतिमा उनके उन्नतिशील जीवन की द्योतक रही है। अपने छात्र-जीवन से ही वे छात्रों में सबसे आगे रहते थे। परीक्षाफल में वे अनिवार्य रूप से उच्च स्थान पाते थे। देश-भक्ति, सेवा-परायणता, कर्तव्य-निष्ठा आदि के साथ-साथ उनकी योग्यता सराहनीय है। उनके संभाषण से जान पड़ता है कि किसी कोष को अत्यधिक मधुर भाषण-शक्ति मिल गयी हो। उनमें और दो गुण हैं—पहला, कभी न बुझनेवाला आशावाद और दूसरा, असफल न होनेवाला बल। जबर्दस्त भावनाओं का उनके मन पर साम्राज्य रहता है। मानव की ज्ञान-शक्ति का शिक्षा द्वारा जो विकास होता है उसका प्रसार उन्होंने अविरल रूप में किया है।

उनके व्यक्तित्व की अनेक शाखाओं उपशाखाओं में फैली हुई विशालता सामर्थ्य में और अधिक सघन होकर किसी को दुर्बल होने का अवकाश नहीं देती, उनकी सहज स्वीकृति किसी को उदासीन रहने का अधिकार नहीं सौंपती और उनकी रहस्यमयी स्पष्टता किसी को कृत्रिम बन्धनों से नहीं घेरती। प्रशान्त व चेतना के बाधन के समान मुख पर बिखरी रेखाओं के बीच में सुडौल नासिका को गर्व के प्रमाण-पत्र के अतिरिक्त कौन-सा नाम दिया जाय? यह गर्व मानो मनुष्य होने का गर्व है, इतर अहंकार नहीं। इसी से उनके सामने मनुष्य, मनुष्य होने के नाते प्रसन्नता का अनुभव करता है। वे अपने दृढ़ विचारों से अनवरत मर्यादाओं को बाँधे हुए कर्मठता तथा व्यवहार-कुशलता से सबको सुचारु रूप से चलाते आ रहे हैं। १९५२ ई० की बात है।

* [illegible]-भवन के पहाड़ में पण्डित जवाहरलाल नेहरू के साथ हनुमन्तैया [illegible] का आना और पण्डितजी का एक-दूसरे से परिचय कराना। उनके सौम्य रूप और व्यवहार-कुशलता का अनुमान मुझे जिस हालत में

हुआ वह उन्हें नितान्त व्यवहार-कुशल, कर्मठ, विनम्र, उदार और सहनशील मनुष्य ही सिद्ध करता है।

उनके जीवन के हर क्षेत्र में कुछ आदान-प्रदान और कुछ निर्माण उनके साथ चलते हैं। उनकी दृष्टि में वही रहता है जो उनके हृदय में है और जो हृदय में है वही वचन में है। अपने लक्ष्य पर अडिग रहना और सब-कुछ सहूलियत से करते जाना उनका स्वभाव बन गया है। अपने को बड़ा सिद्ध करने के लिये दूसरो को छोटा प्रमाणित करने की दुर्बलता उनमे नही है। वे जहाँ कहीं भी, जिस संस्था मे रहते हैं, सबको सहूलियत तथा सचाई से चलाते जाते हैं। साहित्य तथा साहित्यकारो के लिये भी उनके दिल मे एक खास स्थान है।

वे भीतर से जितने दृढ़ हैं उतने ही नम्र भी। उनमें महृता भी है। पहली भेंट में उन्होने कई दिनों के लिये एक गाड़ी का इन्तज़ाम कर दिया जिससे मैसूर प्रान्त के सभी रमणीक स्थानों को चन्द मित्रो के साथ देखने मे सुविधा हो गयी। जब तक मैं बंगलोर में रहा, समय पर सरकारी अतिथि-भवन मे मोटर आ जाती थी। वृन्दावन का सुहावना-लुभावना दृश्य मैंने कितने मित्रों को दिखलाया। बंगलोर से मैसूर क़रीब सौ मील है। बंगलोर से मैसूर जाने मे रातभर का समय लगता है, रेलगाड़ी और मोटर से ढाई-तीन घंटे। मैं मोटर मे मित्रो के साथ सभी जगह घूमता था और समय पर 'ग्लास-हाउस' में ए० आई० सी० सी० की बैठक मे शामिल हो जाता था। 'ग्लास-हाउस' टीपू सुल्तान का बनवाया हुआ है जिसकी शोभा दर्शनीय है।

श्री के० हनुमनतैया छात्र-जीवन से सार्वजनिक कामो में लगे रहते थे। देश की आज़ादी की लड़ाई में वे सात बार जेल मे गये। जो वस्तु दूर से जितनी सुन्दर दिखाई पड़ती है नज़दीक से वह उतनी आकर्षक नही मालूम पड़ती, और जो निकट से जितनी सुन्दर दिखती है दूर से वैसी दिखाई नही पड़ती। मैंने श्री के० हनुमनतैया को चाहे दूर से देखा या निकट से, वे समान रूप मे आकर्षक प्रतीत हुए। वे अपने स्नेहियों के बीच बड़े कोमल हैं और अहंकारियो के लिये बेहद कठोर। वे बहुत अनुशासन-प्रिय हैं और बहुत कठोर शासक हैं। वे उद्भट वक्ता भी हैं। वे अंग्रेजी और अपनी क्षेत्रीय भाषाओं मे समान रूप मे धाराप्रवाह भाषण करते हैं। उनमे अद्भुत वक्तृत्व-शक्ति है। वे मैसूर के नामी वकील थे लेकिन अपनी चलती वकालत पर लात मारकर आज़ादी की लड़ाई के कामों मे लग गये। वे स्टाकहोम, बर्लिन और आस्ट्रेलिया गये थे। वे संसद की कांग्रेस पार्टी की कार्यकारिणी समिति के सदस्य थे। वे १९५० ई० में 'मैसूर प्रदेश कांग्रेस समिति' के अध्यक्ष थे, १९५२ ई० में 'मैसूर विधान सभा' के सदस्य थे और मैसूर विधान सभा की कांग्रेस पार्टी के नेता निर्वाचित हुए थे। १९६६ ई० में वे ओटवा (कनाडा) में हुई राष्ट्रमण्डलीय संसदीय समिति मे शामिल हुए थे भारतीय प्रतिनिधि के नेता के रूप में। उन्होने अमेरिका के विभिन्न स्थानों मे जन-प्रशासन का अध्ययन किया। उनका वर्तमान पता है—विज्ञान कुंज, नेताजी रोड, बंगलोर-६। आपका जन्म मैसूर राज्य, बेंगिरो में हुआ था।

●

दिया जाय। यह तभी होगा जब देश में पर्याप्त धन हो। इसके अभाव में देश में समाजवाद नहीं आ सकता।

श्री हनुमनतैया अपने कर्तव्य का पालन निष्काम भाव से करते हैं। उनका मत है कि हमारे देश में सार्वजनिक कार्यकर्ताओं को पुरस्कार कम मिलता है और उन्हें नैराश्य और विरोध का ही अधिक सामना करना पड़ता है। उन्हें सन्तोष है कि वे जो भी कार्य करते हैं उसमें उनकी अन्तरात्मा का आदेश रहता है। वास्तविक सन्तोष अपनी अन्तरात्मा के आदेश-पालन में ही है। उनकी बौद्धिक तीक्ष्णता, योग्यता, दिल की सफाई और देश-प्रेम ने उनके मित्रों और हितचिन्तकों के दिल में जगह बना ली है। व्यक्तित्व की महत्ता के साथ उनकी नम्रता, कोमलता और सरलता ने उनका साथ कभी नहीं छोड़ा।

वे शिक्षा, संस्कृति और कला के संगम हैं। उनकी मान्यता है कि जीवन धर्म से अलग होकर नीचे गिरता है और धर्म से मिलकर ऊपर उठता है। उच्चादर्शों की प्राप्ति उनके जीवन का लक्ष्य है। उनके दीप्त मुख-मण्डल पर आध्यात्मिक कान्ति है जो प्रेरणा और सहायता प्रदान करती है। वे अत्यन्त उदार और क्षमाशील हैं। विश्वास की दिव्य ज्योति उनके हृदय में अखण्ड रूप में जलती रहती है। उनकी कार्यशीलता का लोहा सब मानते हैं। उनकी प्रतिमा उनके उन्नतिशील जीवन की द्योतक रही है। अपने छात्र-जीवन से ही वे छात्रों में सबसे आगे रहते थे। परीक्षाफल में वे अनिवार्य रूप में उच्च स्थान पाते थे। देश-भक्ति, सेवा-परायणता, कर्त्तव्य-निष्ठा आदि के साथ-साथ उनकी योग्यता सराहनीय है। उनके संभाषण से जान पड़ता है कि किसी कोयल को अत्यधिक मधुर भाषण-शक्ति मिल गयी हो। उनमें और दो गुण हैं—पहला, कभी न बुझनेवाला आशावाद और दूसरा, असफल न होनेवाला बल। जबर्दस्त भावनाओं का उनके मन पर साम्राज्य रहता है। मानव की ज्ञान-शक्ति का शिक्षा द्वारा जो विकास होता है उसका प्रसार उन्होंने अविरल रूप में किया है।

उनके व्यक्तित्व की अनेक शाखाओं-उपशाखाओं में फैली हुई विशालता सामर्थ्य में और अधिक सघन होकर किसी को दुर्बल होने का अवकाश नहीं देती, उनकी सहज स्वीकृति किसी को उदासीन रहने का अधिकार नहीं सौंपती और उनकी रहस्यमयी स्पष्टता किसी को कृत्रिम बन्धनों से नहीं घेरती। प्रशान्त व चेतना के बन्धन के समान मुख पर बिखरी रेखाओं के बीच में सुडौल नासिका को गर्व के प्रमाण-पत्र के अतिरिक्त कौन-सा नाम दिया जाय? वह गर्व मानो मनुष्य होने का गर्व है, इतर अहंकार नहीं। इसी से उनके सामने मनुष्य, मनुष्य होने के नाते प्रसन्नता का अनुभव करता है। वे अपने दृढ़ विचारों से असंख्य संस्थाओं को बाँधे हुए कर्मठता तथा व्यवहार-कुशलता से सबको सुचारु रूप से चलाते जा रहे हैं। १६५२ ई० की बात है। बंगलोर के अतिथि-भवन के अहाते में पण्डित जवाहरलाल नेहरू के साथ टहलते समय श्री के० हनुमनतैया का आना और पण्डितजी का एक-दूसरे से परिचय कराना। उस समय के उनके व्यक्ति-रूप और व्यवहार-कुशलता का अनुमान मुझे जिस हालत में

हुआ वह उन्हें नितान्त व्यवहार-कुशल, कर्मठ, विनम्र, उदार और सहनशील मनुष्य ही सिद्ध करता है।

उनके जीवन के हर क्षेत्र में कुछ आदान-प्रदान और कुछ निर्माण उनके साथ चलते हैं। उनकी दृष्टि मे वही रहता है जो उनके हृदय में है और जो हृदय मे है वही वचन मे है। अपने लक्ष्य पर अडिग रहना और सब-कुछ सहूलियत से करते जाना उनका स्वभाव बन गया है। अपने को बड़ा सिद्ध करने के लिये दूसरो को छोटा प्रमाणित करने की दुर्बलता उनमें नही है। वे जहाँ कहीं भी, जिस संस्था मे रहते हैं, सबको सहूलियत तथा सचाई से चलाते जाते हैं। साहित्य तथा साहित्यकारो के लिये भी उनके दिल में एक खास स्थान है।

वे भीतर से जितने दृढ़ हैं उतने ही नम्र भी। उनमें महत्ता भी है। पहली भेंट में उन्होंने कई दिनों के लिये एक गाड़ी का इन्तजाम कर दिया जिससे मैसूर प्रान्त के सभी रमणीक स्थानों को चन्द मित्रों के साथ देखने मे सुविधा हो गयी। जब तक मैं बंगलोर में रहा, समय पर सरकारी अतिथि-भवन मे मोटर आ जाती थी। वृन्दावन का सुहावना-लुभावना दृश्य मैंने कितने मित्रो को दिखलाया। बंगलोर से मैसूर करीब सौ मील है। बंगलोर से मैसूर जाने मे रातभर का समय लगता है, रेलगाड़ी और मोटर से ढाई-तीन घंटे। मैं मोटर में मित्रों के साथ सभी जगह घूमता था और समय पर 'ग्लास-हाउस' में ए० आई० सी० सी० की बैठक मे शामिल हो जाता था। 'ग्लास-हाउस' टीपू सुल्तान का बनवाया हुआ है जिसकी शोभा दर्शनीय है।

श्री के० हनुमनतैया छात्र-जीवन से सार्वजनिक कामों मे लगे रहते थे। देश की आजादी की लड़ाई मे वे सात बार जेल में गये। जो वस्तु दूर से जितनी सुन्दर दिखाई पड़ती है नजदीक से वह उतनी आकर्षक नही मालूम पड़ती, और जो निकट से जितनी सुन्दर दिखती है दूर से वैसी दिखाई नही पड़ती। मैंने श्री के० हनुमनतैया को चाहे दूर से देखा या निकट से, वे समान रूप में आकर्षक प्रतीत हुए। वे अपने स्नेहियों के बीच बड़े कोमल हैं और अहकारियो के लिये बेहद कठोर। वे बहुत अनुशासन-प्रिय हैं और बहुत कठोर शासक हैं। वे उद्भट वक्ता भी हैं। वे अंग्रेजी और अपनी क्षेत्रीय भाषाओं में समान रूप मे धाराप्रवाह भाषण करते हैं। उनमें अद्भुत वक्तृत्व-शक्ति है। वे मैसूर के नामी वकील थे लेकिन अपनी चलती वकालत पर लात मारकर आजादी की लड़ाई के कामों में लग गये। वे स्टाकहोम, डब्लिन और आस्ट्रेलिया गये थे। वे संसद की कांग्रेस पार्टी की कार्यकारिणी समिति के सदस्य थे। वे १९५० ई० में 'मैसूर प्रदेश कांग्रेस समिति' के अध्यक्ष थे, १९५२ ई० में 'मैसूर विधान सभा' के सदस्य थे और मैसूर विधान सभा की कांग्रेस पार्टी के नेता निर्वाचित हुए थे। १९५६ ई० मे वे ओटवा (कनाडा) में हुई राष्ट्रमण्डलीय संसदीय समिति में शामिल हुए थे भारतीय प्रतिनिधि के नेता के रूप में। उन्होंने अमेरिका के विभिन्न स्थानों में जन-प्रशासन का अध्ययन किया। उनका वर्तमान पता है—बंगाल कुंज, नेमारी रोड, बंगलोर-६। आपका जन्म मैसूर राज्य, बेरिरी मे हुआ था।

●

ठाठ-बाट से कर लेते हैं। राज्य में नये प्राण फूंकने के लिए उनके समान उत्साही और अनुभवी मनुष्य की आवश्यकता है। वे जब से सरकार में आये हैं जनता में नयी चेतना और कार्य-प्रेरणा जागी है। उनके सहयोगियों को भी चाहिए कि वे उनके समान ही देश को आगे बढ़ायें।

पाण्डेयजी का कथन है कि जीवन की कोई भी स्थिति हो, उत्साह सदा सहायक होता है। सभी प्रसिद्ध व्यक्ति अनेक भिन्नताओं के बावजूद एक गुण में समान होते हैं—वे सभी अपने ध्येय के प्रति पूर्ण उत्साही और आशावान् होते हैं। पाण्डेय जी ने भी इस आशा को लेकर ही बिहार की बागडोर अपने हाथों में ली है। आशा है, भगवान् उनके इस कार्य में उनकी मदद करेगा। भविष्य आशामय है, इसमें सन्देह नहीं।

पाण्डेयजी प्रत्येक सचाई के मित्र हैं और प्रत्येक बुराई के घोर शत्रु। वे जिसे सत्य समझते हैं उसका समर्थन जी-जान से करते हैं। जो उन्हें असत्य लगता है वे उसे निर्भय होकर ठुकराते हैं। उन्होंने असत्य से समझौता करना सीखा नहीं। वे न सुखों में खोये न दु:खों में घबराये। सच्चे कर्मयोगी की तरह वे कर्मरत रहते हैं।

सार्वजनिक जीवन में व्यक्तिगत बात गौण हो जाती है। पाण्डेयजी जिस स्थान पर बैठकर बिहार की जनता की सेवा में रत हैं, वह सार्वजनिक जीवन है। इसलिए उनके व्यक्तिगत जीवन में उनका कुछ नहीं है। उनका मत है कि सत्य को सँभालकर प्रकट करने में ही कल्याण-लाभ होता है और अनवधानतापूर्वक प्रकट किया हुआ सत्य प्रायः अहितकर होता है।

उनके चेहरे पर एक अद्भुत गरिमामय आकर्षण है। उनकी मुस्कान में शिशु-सुलभ सरलता है। उनकी आकृति दिव्य ज्योति से मण्डित है जिससे उनका ब्राह्मणत्व चमकता है। वे नितान्त निरभिमान होते हुए भी सदा स्वाभिमान, सन्तोष और मस्ती के साथ रहते हैं—यह उनका जन्मजात गुण है।

उनका जन्म बिहार के उस ज़िले में हुआ जिसमें राम, लक्ष्मण और सीता वर्षों तक गुरु वसिष्ठ के साथ तरह-तरह की विद्याओं के अध्ययन में रत रहे। महात्मा [illegible] ने अंग्रेज़ों के अत्याचार को दूर करने के लिए उस ज़िले को अपना कार्य-क्षेत्र बनाया। वह ज़िला है चम्पारण जिसके तोन्हा ग्राम में पाण्डेयजी का जन्म १४ जून, १९२० ई० में हुआ था। वे बचपन से विलक्षण बुद्धि के हैं। वे पढ़ने में तेज थे। एक [illegible] था, जब बिहार के अधिकतर लोग 'बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय' में पढ़ते थे। [illegible] वे भी वहीं पढ़ने गये। उनपर मालवीयजी की कृपा रहती थी। वहीं [illegible] से उन्होंने एम० एस-सी० की परीक्षा पास की। उन्होंने कानून की [illegible] की। वे मोतीहारी में वकालत करने लगे। उसके बाद उन्होंने 'पटना [illegible]' [illegible] स्वाधीनता-आन्दोलन में सक्रिय रूप से भाग लेने के [illegible] पाँच वर्षों की सजा दी थी लेकिन वे एक वर्ष के बाद [illegible] विदेशों का भ्रमण अनेक बार किया है। उनका सम्बन्ध [illegible] से सन् १९५२ ई० से ही रहा है। वे १९५८ ई०

उपायों से उनमें उत्तीर्ण होना चाहा है। वे उन परीक्षाओं में बैठने के महत्त्व को सफल-विफल होने के परिणाम से अधिक भारी समझते हैं। उन्होंने जीवन के बावन वसन्त देखे हैं जिनमें उन्होंने अनेक रंग देखे हैं। वे रंग एक से बढ़कर एक रूप रखते हैं जो उनके जीवन को प्रतिक्षण ताजा बनाये रखते हैं। किसी रंग में आज तक फीकापन नहीं आया। उनके साथ जीवन में आदान चलता रहता है और निर्माण भी। पुरातन संस्कारों का घेरा उन्हें वंश-परम्परा से मिला है पर उसमें नये आलोक को लानेवाले झरोखों का निर्माण उनका अपना है। उनकी दृष्टि में वही रहता है जो उनके हृदय में है। वे आर्थिक दृष्टि से सुखमयी स्थिति में हैं—इसका श्रेय उनके किसानपन को है।

जैसा उनका गौर वर्ण है और गौर रंग है वैसा ही उनका भरा हुआ नाजुकपन लिये हुए शरीर भी है। जैसा उनका आकर्षण है और व्यवहार मिलनसार है वैसी ही उनकी बोली मीठी है और मिलने-जुलने का ढंग भी बहुत आकर्षक है और मोहक भी। हमारी संस्कृति में ब्राह्मण के जिन गुणों का वर्णन है वे उनके मूर्तरूप हैं।

मँझोला कद, गठा हुआ गोरा-छरहरा शरीर, अंग-प्रत्यंग में सुडौलपन, हास्यमयी मुद्रा, सरलता, सज्जनता, सहृदयता और दृढ़ता के प्रतीक—यही हैं बिहार राज्य के मुख्य मंत्री श्री केदार पाण्डेय। उनका हृदय समुद्रवत् विशाल है जिसमें उन्होंने छोटे-बड़े सभी प्रतिभावान् व्यक्तियों को स्थान दिया है और उनकी सहायता की है।

वे सीधे-सादे सुख-सम्पन्न ब्राह्मण-परिवार की परम्परा में पालित हुए। उनकी प्रकृति में मृदुलता है और सौम्यता है। वे पारिवारिक जीवन के अभ्यस्त हैं। वे सदा सब कामों में तत्पर और सहायक होते हैं। वे मानवता की साक्षात् मूर्ति हैं।

वे प्रकृति से विनम्र हैं, निर्भीक हैं और सुदृढ़ हैं। कोई आसानी से उन्हें अपने विचारों से डिगा नहीं सकता। उनकी मानवीयता उनका सबसे बड़ा गुण है जो सबको उनकी ओर आकृष्ट कर लेता है। उनमें सजीवता है, साहसिकता है, व्यावहारिक निर्मलता है और है सत्य-परायणता। उनके सम्पर्क में आनेवाला उनके गुणों को विस्मृत नहीं कर सकता।

उनका मस्तिष्क विभिन्न प्रकार की ज्ञान-राशि का भण्डार है। यह सब लोग मानते हैं कि मानव-शरीर धारण करने के नाते सबमें दुर्बलताएँ रहती हैं। पाण्डेय जी मानवीय दुर्बलताओं से बचे नहीं हैं। वे बचपन से ही उत्साही और प्रभावशाली हैं। यही कारण है, वे बराबर अपने विचारों को कार्य-रूप में परिणत करते रहते हैं जिससे मानव-कल्याण हो। उनका व्यक्तित्व उस वृक्ष की तरह है जो निरन्तर बढ़ता रहता है। उन्हें देखकर लोगों को भरोसा मिलता है और बल भी। बोलना कम, काम पूरा, डींग जरा भी नहीं, गर्व जरा भी नहीं, शालीन और सन्नद्ध। वे आस्तिक हैं। वे यह अच्छी तरह से समझते हैं कि आजकल जनता को अच्छी पार्टी में उतना मतलब नहीं है जितना अच्छी सरकार में। प्रशासन में सुधार होना ही श्रेयस्कर है। यह आवाज भारत के घर-घर में आ रही है। यों होनी अनहोनी बनकर आती है। पाण्डेय जी व्यवहार-कुशल हैं। इसलिए वे राज्य के दैनिक व्यापार का सचालन बहुत

श्री केदार पाण्डे

प्रियबन्धु श्री केदार पाण्डेय को मैं कब से जानता हूँ, स्मरण नहीं है। लेकिन जीवन में वह शुभ मुहूर्त कभी-न-कभी अवश्य आया होगा जब उनका प्रथम दर्शन और परिचय हुआ होगा। मुझे विश्वास है, उस आनन्दमय अवसर पर भी मुझे ऐसा ही अनुभव हुआ होगा कि मैं उनसे न जाने कब से परिचित हूँ। उनके व्यक्तित्व में आत्मीयता का ऐसा गजब आकर्षण है कि उसका उदाहरण पाना दुष्कर है।

उनका सेवा-परायण और परोपकार-निरत रूप मुझे बहुत प्यारा है। उनकी असाधारण सहृदयता, उनके सरल स्वभाव तथा सौजन्य से भला कौन प्रभावित नहीं होगा? उनके सौहार्द का सुख मुझे तो आजीवन और हमारे देश तथा समाज को सैकड़ों वर्षों तक मिलता रहे!

वे जितने महान् हैं, उतने स्नेहवान् भी। वे शब्दों का प्रयोग सावधानता-पूर्वक करते हैं जिनसे उनके हृदयगत भाव ज्यों-के-त्यों झलकते हैं। वे अपनी वस्तुएँ अच्छे-से-अच्छे रूप में रखते हैं। इससे उनकी स्वाभाविक कला-प्रियता प्रकट होती है।

वे इस युग में धवलगिरि की धवल चोटी के समान स्वच्छ और महान् हैं। इतना होते हुए भी उनका दिमाग बादलों में नहीं है वरन् साधारण जनता में है। मैं उनके स्नेह को पाकर बहुत गौरवान्वित हूँ। उनकी वक्तृत्व-शक्ति सरसता और सार-ग्राहिता से समन्वित होती है। उनसे सैकड़ों व्यक्तियों का कल्याण होता है। उनकी सफलता की कुंजी है—घोर परिश्रम, दृढ़ संकल्प, कर्त्तव्यपरायणता और मनुष्यत्व। उनके विषय में मैंने ऐसी कोई बात नहीं कही है जो पहले नहीं कही गयी हो।

उन्होंने मनुष्य की स्वभावगत महानता की न केवल कल्पना की है वरन् अथक अन्वेषण कर उसे अपने व्यवहार से सिद्ध किया है। इसी से जनसाधारण की चर्चा में वे साहसपूर्वक घोषणा करते हैं—मुझे जन तो बहुत मिले लेकिन साधारण कोई नहीं मिला। पाण्डेय जी के रहन-सहन और बोल-चाल उन्हें किसी के निकट अपरिचित नहीं रहने देते। उन्हें सुख-सम्पन्न परिवार मिला है जिसके चारों ओर सुख-ही-सुख है। उनके व्यक्तित्व को अपने संस्कार और वातावरण के अनुसार विकास की सुविधा मिली।

उन्होंने जीवन की पुस्तक का हर पृष्ठ जिज्ञासु विद्यार्थी की तरह कठिन श्रम के साथ पढ़ा है। उन्होंने कठिन परीक्षाओं से न कभी भागने की इच्छा की है न अधैर्य

उपायों से उनमें उत्तीर्ण होना चाहा है। वे उन परीक्षाओं मे बैठने के महत्व को सफल-विफल होने के परिणाम से अधिक भारी समझते हैं। उन्होंने जीवन के बावन वसन्त देखे हैं जिनमे उन्होंने अनेक रंग देखे हैं। वे रंग एक से बढकर एक रूप रखते हैं जो उनके जीवन को प्रतिक्षण ताजा बनाये रखते हैं। किसी रंग मे आज तक फीकापन नही आया। उनके साथ जीवन मे आदान चलता रहता है और निर्माण भी। पुरातन संस्कारों का घेरा उन्हें वंश-परम्परा से मिला है पर उसमे नये आलोक को लानेवाले झरोखों का निर्माण उनका अपना है। उनकी दृष्टि मे वही रहता है जो उनके हृदय में है। वे आर्थिक दृष्टि से सुखमयी स्थिति मे हैं—इसका श्रेय उनके किसानपन को है।

जैसा उनका गौर वर्ण है और गौर रंग है वैसा ही उनका भरा हुआ नाजुकपन लिये हुए शरीर भी है। जैसा उनका आकर्षण है और व्यवहार मिलनसार है वैसी ही उनकी बोली मीठी है और मिलने-जुलने का ढंग भी बहुत आकर्षक है और मोहक भी। हमारी संस्कृति में ब्राह्मण के जिन गुणो का वर्णन है वे उनके मूर्तरूप हैं।

मॅझोला क़द, गठा हुआ गोरा-छरहरा शरीर, अंग-प्रत्यंग मे सुडौलपन, हास्यमयी मुद्रा, सरलता, सज्जनता, सहृदयता और दृढता के प्रतीक—यही हैं बिहार राज्य के मुख्य मंत्री श्री केदार पाण्डेय। उनका हृदय समुद्रवत् विशाल है जिसमें उन्होंने छोटे-बड़े सभी प्रतिभावान् व्यक्तियों को स्थान दिया है और उनकी सहायता की है।

वे सीधे-सादे सुख-सम्पन्न ब्राह्मण-परिवार की परम्परा मे पालित हुए। उनकी प्रकृति मे मृदुलता है और सौम्यता है। वे पारिवारिक जीवन के अभ्यस्त हैं। वे सदा सब कामो में तत्पर और सहायक होते हैं। वे मानवता की साक्षात् मूर्ति हैं।

वे प्रकृति से विनम्र हैं, निर्भीक हैं और सुदृढ़ हैं। कोई आसानी से उन्हें अपने विचारो से डिगा नही सकता। उनकी मानवीयता उनका सबसे बड़ा गुण है जो सबको उनकी ओर आकृष्ट कर लेता है। उनमे सजीवता है, साहसिकता है, व्यावहारिक निर्मलता है और है सत्य-परायणता। उनके सम्पर्क मे आनेवाला उनके गुणों को विस्मृत नही कर सकता।

उनका मस्तिष्क विभिन्न प्रकार की ज्ञान-राशि का भण्डार है। यह सब लोग मानते हैं कि मानव-शरीर धारण करने के नाते सबमें दुर्बलताएँ रहती हैं। पाण्डेय जी मानवीय दुर्बलताओं मे बचे नही हैं। वे बचपन से ही उत्साही और कल्पनाशील हैं। यही कारण है, वे बराबर अपने विचारों को [illegible] स्थिर करते रहते हैं जिससे मानव-कल्याण हो। उनका व्यक्तित्व उन [illegible] से निरन्तर बढ़ता रहता है। उन्हें देखकर [illegible] भी। बोलना कम, काम [illegible] है। वे आस्तिक है [illegible] बातों में उनका [illegible] ही भेदकर है। [illegible] बढ़कर कामी है। [illegible] का स्वभाव बहुत

ठाठ-बाट से कर लेते हैं। राज्य में नये प्राण फूंकने के लिए उनके समान उत्साही और अनुभवी मनुष्य की आवश्यकता है। वे जब से सरकार में आये हैं जनता में नयी चेतना और कार्य-प्रेरणा जागी है। उनके सहयोगियों को भी चाहिए कि वे उनके समान ही देश को आगे बढ़ायें।

पाण्डेयजी का कथन है कि जीवन की कोई भी स्थिति हो, उत्साह सदा सहायक होता है। सभी प्रसिद्ध व्यक्ति अनेक भिन्नताओं के बावजूद एक गुण में समान होते हैं—वे सभी अपने ध्येय के प्रति पूर्ण उत्साही और आशावान् होते हैं। पाण्डेय जी ने भी इस आशा को लेकर ही बिहार की बागडोर अपने हाथों में ली है। आशा है, भगवान् उनके इस कार्य में उनकी मदद करेगा। भविष्य आशामय है, इसमें सन्देह नहीं।

पाण्डेयजी प्रत्येक सचाई के मित्र हैं और प्रत्येक बुराई के घोर शत्रु। वे जिसे सत्य समझते हैं उसका समर्थन जी-जान से करते हैं। जो उन्हें असत्य लगता है वे उसे निर्भय होकर ठुकराते हैं। उन्होंने असत्य से समझौता करना सीखा नहीं। वे न सुखों में खोये न दु.खों में घबराये। सच्चे कर्मयोगी की तरह वे कर्मरत रहते हैं।

सार्वजनिक जीवन मे व्यक्तिगत बात गौण हो जाती है। पाण्डेयजी जिस स्थान पर बैठकर बिहार की जनता की सेवा में रत हैं, वह सार्वजनिक जीवन है। इसलिए उनके व्यक्तिगत जीवन में उनका कुछ नहीं है। उनका मत है कि सत्य को संभालकर प्रकट करने में ही कल्याण-लाभ होता है और अनवधानतापूर्वक प्रकट किया हुआ सत्य प्राय: अहितकर होता है।

उनके चेहरे पर एक अद्‌भुत गरिमामय आकर्षण है। उनकी मुस्कान में शिशु-सुलभ सरलता है। उनकी आकृति दिव्य ज्योति से मण्डित है जिससे उनका ब्राह्मणत्व चमकता है। वे नितान्त निरभिमान होते हुए भी सदा स्वाभिमान, सन्तोष और मस्ती के साथ रहते हैं—यह उनका जन्मजात गुण है।

उनका जन्म बिहार के उस जिले में हुआ जिसमें राम, लक्ष्मण और सीता वर्षों तक गुरु वसिष्ठ के साथ तरह-तरह की विद्याओं के अध्ययन में रत रहे। महात्मा गांधी ने अंग्रेजों के अत्याचार को दूर करने के लिए उस जिले को अपना कार्य-क्षेत्र बनाया। वह जिला है चम्पारण जिसके तोल्हा ग्राम मे पाण्डेयजी का जन्म १४ जून, १९२० ई० में हुआ था। वे बचपन से विलक्षण बुद्धि के हैं। वे पढ़ने मे तेज थे। एक समय था, जब बिहार के अधिकतर लोग 'बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय' में पढ़ते थे। श्री पाण्डेयजी भी वहीं पढने लगे। उनपर मालवीयजी की कृपा रहती थी। वहीं से १९४४ ई० में उन्होंने एम० एस-सी० की परीक्षा पास की। उन्होंने क़ानून की परीक्षा भी पास की। वे मोतीहारी में वकालत करने लगे। उसके बाद उन्होंने 'पटना उच्च न्यायालय' में वकालत की। स्वाधीनता-आन्दोलन में सक्रिय रूप से भाग लेने के कारण तत्कालीन सरकार ने उन्हें पाँच वर्षों की सजा दी थी लेकिन वे एक वर्ष के बाद ...न से मुक्त हो गये। उन्होंने विदेशों का भ्रमण अनेक बार किया है। उनका सम्बन्ध ...न मंडल तथा प्रशासनिक यंत्र से सन् १९५२ ई० से ही रहा है। वे १९६८ ई०

में अमेरिका और पश्चिमी देशों की यात्रा पर गये थे। पूर्वी देशों की यात्रा के क्रम में वे जापान गये थे।

वे सन् १९५२ ई० से विधान सभा के सदस्य निर्वाचित होते आ रहे हैं। वे १९५७ में पहली बार राज्य-मंत्रिमण्डल में उपमंत्री चुने गये। इसके बाद वे बराबर इस पद पर बने रहे। १९६९ ई० में वे मन्त्रि-परिषदीय स्तर के मंत्री हुए।

उन्होंने कई विभाग सँभाले हैं। इससे उनके अनुभव का क्षितिज विस्तृत हुआ है। उनमें आदमी पहचानने की दैवी शक्ति है। परिवर्तन प्रकृति का नियम है। लेकिन पाण्डेयजी के जीवन में जैसा विकासोन्मुख परिवर्तन होता रहा है वैसा बहुत कम लोगों के जीवन में घटित हुआ है। उनके व्यक्तित्व की आकर्षकता, उनकी महती मृदुता, उनकी अदम्य साहसिकता और अथक कार्य-शक्ति को हमारे युग के नवयुवक कभी विस्मृत नहीं करेंगे।

o

बाप के पास पहुँच जाता।) दोनों गंगा-तट पर बैठकर बातें कर रहे थे। उसी समय चार सौ गायों को लेकर कसाई दक्षिण पार जाने को गंगा-तट पर आये। यह बात अभी बाबा को मालूम हुई। वे दौड़े हुए पिताजी के पास आए और कसाई की बात उन्हें बतलायी। पिताजी करुणार्द्र हो उठे। उन्होंने कसाई को अपने पास बुलाकर गायों का दाम पूछा। कसाई ने दाम के रूप में चार सौ रुपये बतलाये। पिताजी ने बाबू भोलासिंह को घर भेजा और चार सौ रुपये मँगवाकर गायों की जानें बचायी। उन्होंने सभी गायें गाँव के चरवाहों द्वारा अपने घर में भिजवायीं। स्नान कर वे घर पहुँचे। उन गायों की देखभाल के लिए उन्होंने कुछ चरवाहे बहाल किये। वे चरवाहे उन गायों को परती में चराते थे और शाम में दरवाज़े पर बाँध जाते थे।

एक और कहानी याद आ गयी। एक समय था जब नागा साधु हाथी-घोड़े-ऊँट के साथ काफिला लेकर भ्रमण करते थे। एक दिन की बात है। सरयू नदी की बाढ़ का पानी सरयू के पेट में चला गया था। जो ज़मीन पानी में थी, बाहर हो गयी। एक दिन पाँच सौ नागा साधुओं ने अपने काफिले के साथ तट पर डेरा डाला। दो-चार नागा साधु मेरे पिताजी के पास आये और उनसे पूछा—'बाबू राजकिसुनसिंह कहाँ हैं ?" मेरे पिताजी ने उन लोगों से सारी जानकारी हासिल कर ली और उन्हें बैठने को कहा तथा स्वयं अपनी माता के पास गये जो मेरे सामने एक सौ आठ वर्षों की आयु में स्वर्ग सिधारीं। उन्होंने अपनी माता से सारी बातें कहीं। इतने लोगों के भोजन आदि की व्यवस्था करना और वह भी देहात में ज़रा कठिन है। वे माँ के पास बैठकर सोचने लगे। कुछ देर के बाद वे आँगन से दरवाज़े पर आये। उन्होंने देखा कि कलकत्ते से चावल-दाल से लदी दो नावें आ गयी हैं जिनके मल्लाहों ने उन्हें प्रणाम किया। उन्होंने मल्लाहों को हुक्म दिया कि सारी चीज़ें नागा साधुओं को दे दी जायँ और घर से आटा-घी आदि भिजवा दिये। भगवान् ने बात-की-बात में सारी व्यवस्था कर दी। सभी साधु सुबह में दूसरी जगह को प्रस्थान कर गये। भगवान् अपने भक्तों की लाज रखते हैं।

पिताजी के दरवाज़े पर दस-पाँच साधु प्रतिदिन संध्या में आते थे जिनके भोजन-शयन आदि की व्यवस्था पिताजी करते थे। उन लोगों के लिए एक चौकी बनी हुई थी जिसपर दरी बिछी रहती थी। वे रात में विश्राम करते थे और सुबह चले जाते थे। जिस शाम में कोई यात्री नहीं आता था, पिताजी उदास हो जाते थे और कहते थे कि भगवान् मुझपर क्रुद्ध हैं। जब ऐसा होता था, वे गाँव के ब्राह्मणों को बुलाते थे और उनको भोजन कराकर स्वयं खाते थे। वे अतिथियों को देवता मानते थे। ऐसे थे वे आतिथेय-भावना के अचल-अटल प्रतीक। उनमें परोपकारिता कूट-कूटकर भरी थी। वे स्वार्थहीन दयालु थे। उनकी दानशील वृत्ति असीम थी।

उनका स्वर्गवास १६०० ई० से दस दिन पहले गाँव में हुआ था। उनका भौतिक शरीर नश्वर था लेकिन उनकी कीर्ति-गाथाएँ गंगा और सरयू की लहरों में सदा गुंजित रहेंगी और उनकी अमरता का जयगान करेंगी।

माता-पिता के पुण्य प्रताप से ही मैं इतना फूलता-फलता हूँ। तुलसी ने ठीक लिखा है—'बाढहि पूत पिता के धर्म्मा।' मेरी माता का नाम श्रीमती महरानी देवी था। उनका देहान्त १९३६ ई० में हुआ था। उस दिन मैं छपरा जिले के मसरक गाँव में हुए कवि-सम्मेलन में गया था। मेरी पत्नी का देहान्त १९३१ ई० में हुआ जब मैं भागलपुर जेल में एक राजनैतिक बन्दी के रूप में था। उसी वर्ष मेरी दुहिता का भी स्वर्गवास हुआ। इसके बाद मैं पुनः वैवाहिक बन्धन में नहीं फँसा क्योंकि बराबर जेल में ही रहना पड़ता था।

श्री उमाशंकर दीक्षित (मंत्री, भारत)

बैसवाड़े के ठेठ किसानपन की झलक देनेवाली सुडौल आकृति-प्रकृति के साथ-साथ दिल्ली की कवित्वपूर्ण भावुकता-गम्भीरता का सम्मिश्रण मनस्वी श्री उमाशंकर दीक्षित के दिव्य मुख मंडल पर इतना प्रभावशाली है कि जी करता है कि मैं उन्हें बराबर देखता रहूँ और कुछ बातें भी उनसे करता रहूँ। लाली लिये हुए दिव्य-सुन्दर मुख-मंडल पर गम्भीरता की छाया सदा दौड़ती है। साढ़े छह फीट का सुन्दर-सुडौल शरीर, आनन और मन पर भावुकता का अवलेप नहीं। कुसुंभ के रंग के समान धप-धप उजला कुरता, उजली टोपी और उसके अनुपात में धप-धप उजली धोती। जैसी सुडौल और भारी उनकी आकृति है वैसे ही उनकी मधुर आवाज अन्तःकरण की देश-भक्ति से भीगी है। जैसा उनका रंग गोरा है वैसे ही उनके माथे के बाल सफ़ेद हैं। जिस प्रकार उनका दिव्य गोरा शरीर है उसी प्रकार उनका मन शुभ्र, निष्कलंक है तथा मन के अनुरूप ही उज्ज्वल चरित्र भी।

हमारी संस्कृति में ब्राह्मण के जिन गुणों का वर्णन है, वे उनके मूर्तरूप हैं। उनके मन पर दो सबल भावनाओं का साम्राज्य है—मानव की ज्ञान-शक्ति का शिक्षा द्वारा जो विकास होता है उसके सतत प्रसार का प्रयत्न और जिस गरीबी से मानवोचित गुण लुप्त हैं उसको देश से दूर करना। ये दोनों भावनाएँ वृक्ष की दो शाखाओं के सदृश एक ही मूल से निकली हैं और वह मूल है—देशभक्ति, जिससे प्रेरित होकर वे भारतरत्न श्रीमती इन्दिरा गांधी वगैरह के साथ बहुत प्रयत्न कर रहे हैं।

श्री दीक्षितजी का मत है कि हर व्यक्ति इस असार संसार में लाइमलाइट (प्रकाश) में आना चाहता है और यह भूलता है कि लाइमलाइट तो लाइट (प्रकाश) है, इसलिए वह लाइट तो जो जैसा व्यक्ति होगा, उसे वैसी-की-वैसी दिखा देगी। फूहड़ सुन्दर कैसे दिख सकता है? अतः हर आदमी को अपना चरित्र ऐसा बनाना चाहिए कि वह लाइमलाइट में फूहड़ न दिखे सुन्दर दिखे। इसलिए यह आवश्यक है कि हम चरित्र को जितना उज्ज्वल बना सकते हैं, बनायें। चरित्र पर किसी तरह का धब्बा नहीं लगे, इसपर हर आदमी को ध्यान देना चाहिए, तभी वह संसार में बड़े से-बड़ा काम कर सकता है और इस असार-संसार में चमकता रहेगा।

श्री दीक्षितजी के मुख-मंडल पर सच्चरित्रता, रईसी और ईमानदारी का अद्भुत तेज है। उनके इन गुणों के साथ उनके सौजन्य का प्रभाव लोगों पर बहुत

पड़ता है। अवस्था के बढ़ाव के साथ चेहरे पर कुछ सिकुड़नें दिखती हैं लेकिन उनसे चेहरे पर किसी तरह का भद्दापन नहीं है। ब्राह्मण गौर वर्ण के होते हैं और वे बहुत गोरे हैं भी। उनके गोरेपन में उनके चेहरे पर गुलाब-जैसी लाली भी है।

उनके व्यक्तित्व में प्रखर तेजस्विता है, गम्भीरता लिये हुए महती निर्भीकता है और मिठास लिये हुए स्पष्टवादिता है। इसलिए पराधीन भारत के समय में तत्कालीन सरकार की बड़ी क्रूर दृष्टि उनपर रहती थी। उनका अपना एक दर्शन है जिसे वे बराबर व्यक्त करते हैं। वह दर्शन यों है—'भारत में यह विचार प्रचलित है कि आदमी का जीवन दुःखमय है और यह जीवन हमारे दुर्भाग्य का फल है। हम लोग अपने उत्साहमय कर्त्तव्यों से इस जीवन को सुखमय बना लें तो इससे अच्छा और क्या हो सकता है? वस्तुतः यह जीवन सत्य है और मूल्यवान् भी। इसलिए इस जीवन की उत्साहपूर्वक रक्षा और इसे सुखमय बनाना मनुष्य का कर्त्तव्य है।' इस दर्शन के आधार पर श्री दीक्षितजी लोगों को काम करने की राय देते हैं। करना या न करना सुननेवालों पर निर्भर है। वे यदि किसी को ऐसा काम करते देखते हैं जो देश-हित के खिलाफ हो तो वे उसे समझाने से बाज नहीं आते और ऐसा करने के बाद वह मूर्ख के समान देशद्रोह का काम करता है तो अन्त में वे प्रेमपूर्वक उसे कहते हैं कि तुम्हें मनुष्य का शरीर मिला है किन्तु तुम मनुष्य नहीं बन पाये।

सन् १९७१ ई० से १९७८ ई० तक का अपना एक इतिहास है और महत्त्व है और वह इतिहास और महत्त्व है श्रीमती इन्दिरा गांधी का जिसमें उनकी छत्रछाया में—उनके प्रकाश में अनेक व्यक्ति चाँद और सूर्य के समान खास-खास राज्यों में चमक रहे हैं। इन चमकनेवालों में कुछ का अपना व्यक्तित्व है और कुछ ने अपने व्यक्तित्व का निर्माण अपने बलबूते पर किया है। बड़े लोगों के सम्बन्ध में, विशेषतः उनके जीवन-काल में, कुछ लिखना उचित नहीं है। बड़े लोगों की वास्तविक परीक्षा उनके जीवन के बाद होती है, जब उनसे राग-द्वेष और ईर्ष्या करनेवाले तथा प्रशंसा में रत रहनेवाले की हैसियत बदल जाती है। दूसरी बात यह है कि राजनैतिक क्षेत्र में काम करनेवालों के सम्बन्ध में साहित्यकार जब कुछ लिखता है तब साहित्य के प्रेमी निराश हो जाते हैं और उन्हें लगता है कि साहित्य राजनीति के सामने पतित हो गया है। लेकिन मेरा प्रवेश दोनों क्षेत्रों में समान है। मैंने भी देश को आजाद कराने में एक सिपाही के रूप में जितना भी हुआ, किया—किसी बात में किसी से कम नहीं रहा। इसलिए मुझे सभी बातों की जानकारी है। मैं दावे के साथ कहूँगा कि साहित्य स्वभाव से ही राजनीति से श्रेष्ठ है और यदि साहित्य का अमृत नहीं बरसे तो राजनीति को अमरता नहीं मिल सकती। १९३६ ई० के लखनऊ कांग्रेस में मैंने पं० जवाहरलाल नेहरू से ये पंक्तियाँ कहीं तो उन्होंने भी कहा कि ठीक कहते हो। यह वाक्य अक्षरशः सत्य है।

राम ने अपने लिए जो अयोध्या बसायी थी वह बिलकुल उजड़ गयी लेकिन राम के लिए अपने हृदय में जो कुटी वाल्मीकि और तुलसी ने तैयार की थी, वह आज भी मौजूद है और अब राम अयोध्या की अट्टालिका में नहीं, वाल्मीकि और तुलसी की

काव्य-कुटी में निवास करते हैं। मेरी बातों से सहमत या असहमत होना पाठक की अपनी धारणा पर निर्भर है लेकिन लेखक के रूप में मुझे अपनी भावना को व्यक्त करने का पूर्ण अधिकार है। मैंने राजनीतिज्ञों और साहित्यकारों के स्वर-में-स्वर मिलाया है। मैं दोनों के प्रति सद्भावना व्यक्त करता हूँ और ईश्वर से प्रार्थना करता हूँ कि जिन लोगों पर दो शब्द लिखे हैं वे अपने क्षेत्र में फूलें-फलें—जिन्हें देखकर लिखने की प्रेरणा औरों को मिले।

श्री दीक्षितजी अपने दल के सर्वोत्कृष्ट नेता और चिन्तक हैं। उनकी चिन्तन-शक्ति तेजस्विता, मनस्विता, सहृदयता, गम्भीरता और विद्वत्ता से समन्वित है। इसलिए उनके विरोधी भी उन्हें श्रद्धा और विश्वास की दृष्टि से देखते हैं।

ज्ञान-ग्रहण और ज्ञान-दान की अपरिवर्तनीय स्नेहपूर्ण प्रवृत्ति के मूल में जिस नैतिकता और निःस्पृहता की वृत्ति बसती है उसने उन्हें ब्राह्मणत्व की दिव्य विभूति से अलंकृत किया है। उनके समकालीन राजनीतिज्ञों में उनके समान न किसी की धाक है न किसी का बोलबाला। वे अपने निर्धारित कार्य-पथ के पथिक हैं और अपनी ही विचारधारा में बहते हैं। राजनीति की उन्मुक्त गंगा में अवगाहन करनेवाला उनका ब्राह्मण हृदय जाति-धर्म की प्रेमज्योति से दिनरात आलोकित रहता है। साथ-ही साथ एक बात और उनके साथ है। उनकी दृष्टि में ब्राह्मणत्व की अपेक्षा राष्ट्रीयता का मूल्य बहुत अधिक है।

वे आत्म-दुःख-भीरु और पर-दुःख-कातर हैं। दूसरों के दुःख से द्रवीभूत होने का उनका अभ्यास परिपक्व हो गया है जिससे वे अपने अनिष्टकर्त्ता को भी क्षमा करते हैं। उनका ज्ञानार्जन उनकी संग्रह-संचय-वृत्ति का परिणाम है। उनकी बातचीत से पता चल जाता है कि वे राजनीति के प्रदर्शन की कला में पूर्ण पटु हैं। वक्तृत्व की ध्यान-धारा में बहनेवाले इस क्षमताशाली राजनीतिज्ञ की लेखनी जब चिन्तन की भाव-भूमि पर दौडती है तो मालूम पडता है कि उनके दिल और दिमाग में राजनीति के अनमोल वैभव बँधे हुए हैं।

उनके व्यक्तित्व से आधुनिक राजनीति गौरवान्वित हुई है। उनके व्यक्तित्व की उज्ज्वलता सर्वप्रथम हमें उनकी अनुपम अभ्यासशक्ति का साक्षात्कार कराती है। परिमार्जित प्रतिभा की वरदायिनी इस शक्ति की उपासना उनके स्वभाव-धर्म की सबसे बड़ी विशेषता है। उनकी सफलता का सारा श्रेय उनकी इस स्वभाव-धर्म-रूपी राजनीति को—अटूट बुद्धिमत्ता को दिया जाना चाहिए।

उनकी परिश्रमशीलता और व्यवहार-कुशलता इतनी स्वस्थ, सबल, आकर्षक और मधुर है कि भावुकता की स्वप्न-भूमि पर भावविभोर होकर चलनेवाले वे राजनीतिज्ञ नहीं हैं बल्कि जीवन की अनावृत वास्तविकता का व्यावहारिक महत्त्व स्वीकार करनेवाली राजनीति की झलक भी दिखलाते हैं। उनके व्यवहार और बातचीत में वह शक्ति है जो हमारे अन्तस्तल की समस्त मांगलिक आशाओं को उद्वेलित कर हमें इस योग्य बनाती है कि हम गम्भीरतापूर्वक अपनी समस्याओं पर [illegible] करने लगते हैं। अपनी बुद्धिमत्ता से उन्होंने वक्तृता को इतना ऊपर उठा दिया

है कि उनमें किसी और बात की अपेक्षा करना पाठक का अनादर करना है। वे जो कुछ हैं, जैसे हैं, वही और वैसे ही बहुत सुन्दर और सुखद हैं तथा हमारे राजनैतिक प्रासाद के गौरव के अनुरूप हैं।

उनके व्यक्तित्व में विनम्रता है और निरहंकारिता भी। उनमें कर्तव्य-पालन की प्रबल भावना है। वे छोटे-बड़े सभी काम स्वयं करते हैं। वे नयी प्रतिभाओं को बढ़ाकर प्रोत्साहित करते हैं।

५ अप्रैल, १९७० ई० को दिल्ली की जनता देश-गौरव श्री जगजीवन बाबू का जन्म-दिवस मना रही थी। देश-गौरव ने अपने ६३वें वर्ष में प्रवेश किया था। इस शुभ अवसर पर दिल्लीवालों ने मुझे और श्री अरविन्दकुमार को भी बुलाया था। मैं अस्वस्थ था, फिर भी श्री अरविन्द के साथ बड़े उत्साह से दिल्ली गया। ५ अप्रैल को श्री रफीअहमद किदवई पथ पर श्री 'मावलंकर नेशनल हॉल' में ६ बजे शाम सभा थी। समय पर हम लोग पहुँच गए। हॉल में तिल रखने की जगह न थी। हॉल वातानुकूलित था। इसलिए मुझे बैठने में असुविधा हो रही थी। मंच के सामनेवाले दरवाजे से मैं बाहर आकर एक बहुत बड़ी टेबुल पर, जिस पर धवल सफेद चादर बिछी थी, बैठ गया। सभा के अध्यक्ष थे श्री दीक्षितजी। वे समय से कुछ पहले आए, मोटर से उतरकर मेरे पास आए और कहा—"भीतर चलिए। यहाँ क्यों बैठे हैं?" मैंने कहा—"आप चलिए। मैं आ रहा हूँ।" वे बहुत गम्भीर मुद्रा में धीरे-धीरे भीतर जाकर मंच पर बैठ गए। कुछ देर बाद एक नवयुवक मेरे पास आया और मुझे भीतर चलने का आग्रह करने लगा। मैंने अपनी लाचारी प्रकट की। इसके बाद उसने कहा—"मेरी माँ दिवानरे वर्ष की है, उनको भी दमा है। बहुत कष्ट होता है। आप यहीं बैठें।" अन्त में देश-गौरव श्री जगजीवन बाबू आए, मोटर से उतरे और मुझ-पर उनकी नजर पड़ी। वे मेरे पास आए और कहा—"इहाँ काहे बईठल बानी? चलीं भीतर।" उन्होंने समझा कि शायद मुझे जगह नहीं मिली। मैंने उन्हें कहा—"रउआ चलीं। हम आ रहल बानी।" सभा की कार्यवाही ज्योंही आरम्भ हुई, मैं भीतर जाकर मंच पर बैठ गया। श्री दीक्षितजी का अध्यक्षीय भाषण हुआ। उनके विचारों में सजावट थी। भाषण में मधुर-कोमल शब्द नग की तरह चमकते थे। कहीं कोई न चढ़ाव था न उतार। वे एक-समान गति से बोलते थे। जनता मंत्रमुग्ध होकर सुनती थी।

श्री दीक्षितजी जिस काम में हाथ लगाते हैं, उन्हें सफलता मिलती है जिसका कारण है घोर परिश्रम, दृढ़ संकल्प, ईमानदारी, कर्तव्यपरायणता और मनुष्यता। मानवीय जीवन-सरिता का पहाड़ी पड़ाव—विकट पथ—जवानी का पूर्वकाल होता है। श्री दीक्षितजी ने दृढ़तापूर्वक अपने समय की पाबन्दी की है। वार्धक्य में भी उनकी कार्य-शैली और पटुता चमत्कारपूर्ण है। सब काम समय पर करना उनका स्वभाव है जिसमें सरलता है और सरसता भी। इन दोनों गुणों के वे अवतार हैं। उनका सौम्य व्यक्तित्व मनुष्यता के निखरे हुए स्वाभाविक सौन्दर्य का साक्षात्कार कराता है जिसमें प्रतिभा और परिश्रम की समन्वित शक्ति का अधिवास है। जिनके पास

इनकी बड़ी भारी विशेषता है उनके पास लोग कैसे न जाएँगे और वे भी लोगों से कैसे न मिलेंगे? उनकी मिलनसारिता मन में बराबर मिलते रहने का चाव उत्पन्न करती है और चाव को मधुर भावों से भरती है।

उनके स्वभाव, बात, भाषा और वेश की सादगी उनके जीवनगत उस सामंजस्य की अभिव्यक्ति है जो मन, वचन और कर्म की एकरूपता से उपलब्ध होता है। वे जिस बात को पूरी सचाई के साथ अनुभव करते हैं उसी के अनुसार काम करने की चेष्टा करते हैं। यही कारण है, उनका कहना असरदार होता है।

राजनैतिक क्षेत्र में सदैव संलग्न रहनेवाला उनका हृदय उच्च भावनाओं और मंगल कामनाओं से पूर्ण है—उनमें न ढोंग है, न दम्भ; न छल है, न प्रपंच।

भारतरत्न श्रीमती इन्दिरा गांधी की इच्छा भारत की इच्छा हो गई है। उनकी आवाज भारत की आवाज बन गई है। किसी सम्राट् या तानाशाह की इच्छा और आवाज में मानव-इतिहास ने उतना बल नहीं देखा जितना बल श्रीमती इन्दिरा गांधी की इच्छा और आवाज में है। इतना होने पर भी वे सच्चे अर्थों में प्रजातन्त्रवादिनी हैं और प्रजातंत्र की उपासिका होते हुए भी उन्होंने गुट बनाना नहीं सीखा। लेकिन उनके चलते कुछ लोग मनमाना काम कभी-कभी कर देते हैं। यह प्रजातंत्र में बहुत दिनों तक नहीं चलेगा। यह सब क्षणिक ज्योति है जो समय आने पर बुझ जायेगी। श्री दीक्षितजी की चिन्तनधारा और विचार-धारा में उनकी निजी मौलिकता की सत्ता व्याप्त रहती है। वे जो कुछ भी सरकारी काम करते हैं, अपनी सूझ-बूझ का सहारा लेते हुए। वे आज के काम को कल के लिए नहीं छोड़ते। अपने उत्तरदायित्व के निर्वाह में सदा सावधान रहने की जो आदत उनमें है, उसके कारण वे आज की फ़ाइल कल के लिए नहीं छोड़ते। उनके विचार बड़े ठोस और सरस होते हैं। उनकी मुख-मुद्रा उनके ज्ञान-गौरव की परिचायिका है। वे स्वप्न-दर्शन को नहीं, व्यवहार-विवेक को महत्व देते हैं। धैर्य, विवेक और सरलता की त्रिवेणी उनके स्वभाव में स्वाभाविक रूप में बहती है। उनके हाथों में किसी तरह का काम सौंपा जायगा, सुरक्षित रहेगा।

सच्ची बात कहने से अगर देश-समाज की भलाई हो तो उसे कहने में संकोच नहीं करना चाहिए। बात का ढंग ऐसा हो कि सुननेवाले को बुरा न लगे। एक रोज़ मैंने भारत-रत्न श्रीमती इन्दिरा गांधी को पत्र लिखा कि 'हर राज्य की कौंसिल में और राज्य-सभा में लेखक, कवि, पत्रकार, कलाकार आदि के लिए जगहें सुरक्षित रहें। पण्डितजी के बाद चन्द लोगों ने इस परम्परा को समाप्त कर दिया और उन जगहों पर मनमाने ढंग से नाम भरे जाने लगे। आप यह परम्परा क़ायम रखें। जिस किसी ने भी यह क़ानून बनाया था, कुछ सोच-समझकर ही। आप जैसी शक्तिशालिनी और प्रभावशालिनी महिला हमारे देश में बहुत दिनों के बाद देखने को मिली।' इंगलैण्ड के एक पत्र ने इस बात को बड़े सुन्दर ढंग से लिखा था। उषा चली गयी। दुपहरी का दिनमान पश्चिम की ओर ढल रहा है। अब हम चढ़ाई के नहीं, उतार के मुसाफिर हैं। इसलिए मैंने जो पत्र श्रीमती इन्दिराजी को लिखा था, दीक्षितजी को भी लिखा कि ये बातें वे उनके कानों तक पहुँचा दें।

पश्चिम के अधिकतर लोगों के मुखमंडल पर आकर्षण रहता है और उनका बदन भी बहुत लम्बा, सुडौल और दिव्य होता है। इसका कारण यह है कि बैंसवाडे के आस-पास ही उन्नाव वगैरह है। बैंसवाड़े की मिट्टी और आबोहवा का असर वहाँ तक पहुँचे बिना नहीं रहता। बैंसवाड़े के लोग उत्तर भारत के अधिक स्थानों में गाँव-गाँव में बसे हुए हैं। उन्नाव जिले के महाकवि 'निराला' थे। उन्नाव की मिट्टी ने अनेक कवि, नेता और समाज-सेवी पैदा किये हैं। बैंसवाड़े का प्रभाव पश्चिम के लोगों पर काफी पड़ा है। श्री दीक्षितजी बुद्धिवादी के साथ-साथ कर्मठ हैं। मानवता का सबसे बड़ा सद्गुण चरित्र की शुद्धता है। यह चारित्रिक शुद्धता उनमें कूट-कूटकर भरी है। वे आत्मविश्वासी हैं। उनका जीवन विभिन्न अद्भुत समन्वयी गुणों से मंडित है। वे अहंकार, क्रोध, ईर्ष्या, द्वेष आदि से सर्वथा मुक्त हैं। वे भविष्य-द्रष्टा जननायक हैं।

१ जून से ए०आई०सी० की बैठक दिल्ली में होनेवाली थी और ३ जून '७२ को महामहिम राष्ट्रपतिजी वराह वेंकटगिरि, यशस्वी रक्षामंत्री श्री जगजीवनजी को 'एक युग : एक प्रतीक' अभिनन्दन-ग्रंथ माननीयजी उमाशंकर दीक्षित की अध्यक्षता में समर्पित किया गया। निमंत्रण पाते ही मैं ता० १-६-७२ को दिल्ली आ गया और ए० आई० सी० और अभिनन्दन-ग्रंथ समारोह में भाग लिया। श्री विष्णुदेव-नारायण और रवीन्द्रनारायण जी भी आ रहे थे लेकिन किसी कारणवश बरौनी जंक्शन आए। गाड़ी खुलने के कुछ बाद लौटकर बेगूसराय चले गए। विष्णुदेव बाबू ने मुझे काफी हिम्मत देकर दिल्ली भेजा।

श्री उमाशंकर दीक्षित का जन्म १२ जनवरी १९०१ में ग्राम उगो उत्तर प्रदेश में हुआ। इन्होंने १९२० ई० में ही सक्रिय राजनीति में भाग लेना आरम्भ कर दिया था जबकि आप 'क्राइस्ट चर्च कॉलेज, कानपुर' में शिक्षा पा रहे थे। विद्यार्थी-जीवन के १९वें वर्ष में आपने राजनीति का पाठ पढ़ लिया था। अगस्त १९२० ई० में ही आपने असहयोग-आन्दोलन में भाग लिया था और 'उत्तर प्रदेश कांग्रेस कमिटी' के ७४ अन्य सदस्यों के साथ एक वर्ष से अधिक के लिए कारावास में भेज दिये गए थे।

१९३० ई० में श्री दीक्षित ने सत्याग्रह-आन्दोलन में बम्बई में खुलकर भाग लिया। तब इन्हें १० महीने का कारावास का दण्ड मिला परन्तु गांधी-इर्विन-समझौते के अन्तर्गत जेल से मुक्त हुए थे। आपने १९३२ में भूमिगत आन्दोलन में भी भाग लिया और आपको १ वर्ष तीन मास के लिए कठोर कारावास का दण्ड दिया गया। १९४२ ई० के 'भारत छोड़ो आन्दोलन' में भाग लेने पर श्री दीक्षित को दो वर्ष की जेल का दण्ड भुगतना पड़ा। १९२० ई० से १९५० ई० तक श्री दीक्षित ने कांग्रेस-संगठन के विभिन्न पदों पर कुशलतापूर्वक कार्य किया। वे कानपुर नगर कांग्रेस कमिटी के मंत्री तथा उत्तर प्रदेश कांग्रेस कमिटी के सदस्य १९२० से १९२५ तक रहे। १९३० में बम्बई प्रादेशिक कांग्रेस कमिटी के कोषाध्यक्ष चुने गए।

श्री दीक्षित का सम्बन्ध अनेक शिक्षा-संस्थाओं तथा सांस्कृतिक संगठनों से सदा बना रहा है। ये १९२५—१९३० ई० तक उत्तरभारतीय सभा तथा हिन्दीभाषी

सम्मेलन के प्रधान रहे। इन्हीं पाँच वर्षों में आप 'हिन्दुस्तानी प्रचार सभा' के अवैतनिक मंत्री भी रहे। १९३४ ई० से १९४१ ई० तक आपने हिन्दुस्तानी प्रचार-सभा बम्बई के अवैतनिक मंत्री के पद पर भी कार्य किया।

आपको १९४९ ई० में शरणार्थी सम्पत्ति का संरक्षक, कस्टोडियन नियुक्त किया गया था। इस पद पर आपने १९५२ ई० तक कार्य किया। श्री दीक्षित १९५६ ई० में 'राष्ट्रीय लघु उद्योग निगम' के अवैतनिक सलाहकार भी रहे। आप १९५७ ई० से 'एसोसिएटिड जरनल्स लि० लखनऊ' के प्रबन्ध-निर्देशक-पद पर कार्य करते रहे। इस संगठन के अन्तर्गत ही नेशनल हेरल्ड, नवजीवन और कौमी आवाज का प्रकाशन होता है।

१९७१ ई० से ही श्री दीक्षित राज्य-सभा के सदस्य हैं। आपने २ मई १९७१ को उद्योग एवं निर्माण मन्त्रालय के मन्त्रि पद को संभाला है और अत्यन्त कुशलता से इस मन्त्रालय का कार्य चला रहे हैं।

श्री देवेन्द्रप्रसाद यादव (शिक्षा-उपमंत्री, भारत)

राजनीति मे लोग एक रात मे विख्यात हो जाते हैं। यह मैंने कई बार देखा है। व्यक्तिगत सत्याग्रह के प्रथम सत्याग्रही के रूप मे महात्मा गाधी ने जब सन्त विनोबा भावे का नाम घोषित किया तब विनोबा भावे भारत-विख्यात हो गये, इसके पूर्व कुछ विद्वान् ही उन्हे जानते थे। इसी प्रकार १९७१ ई० मे लोकसभा के मध्यावधि साधारण निर्वाचन में, जब श्री देवेन्द्रप्रसाद यादव सयुक्त समाजवादी दल के विख्यात नेता श्री मधु लिमये जी को पराजित कर सम्पूर्ण भारत मे विख्यात हो गये। उनकी इस विजय ने उन्हे प्रसिद्धि ही नही दी, सिद्धि भी। प्रथम बार लोकसभा मे विजयी होकर आनेवाला मन्त्रिपद पर भी प्रतिष्ठित होता है, इसके वे उत्कृष्ट निदर्शन हैं। यह इस बात का प्रमाण है कि उनमे मौलिक योग्यता है, बौद्धिक चातुर्य है, अप्रतिम व्यवहार-कुशलता है और अपूर्व प्रभविष्णुता है, तथा सघटन-शास्त्र मे वे निष्णात हैं। उनमें अपने काम के प्रति अटूट लगन है। इस लगन के साथ वे जिस कार्य को अपने हाथों मे लेते हैं, उन्हें सफलता मिलती है। क्षणिक विफलता से वे निराश नही होते और क्षणिक विफलता को भी वे सफलता के सोपान के रूप में ग्रहण करते हैं। वे उत्साहमयता की मूर्ति हैं। बाधाएं उन्हे अपने मार्ग से च्युत नही कर सकतीं। जिस क्षेत्र मे उनका घर है उस क्षेत्र से सयुक्त समाजवादी दल के नेता श्री मधु लिमये दो बार विजयी हो चुके थे। यह बात श्री यादव ने चुनौती के रूप मे ग्रहण की। उन्होने अपना काम-काज छोड़कर क्षेत्र मे घूमना शुरू किया। अपनी संगठन-शक्ति का उन्होने अपूर्व परिचय दिया और अपने प्रतिद्वन्द्वी को बहुत अधिक मतो से पराजित किया। सम्प्रति वे भारत-सरकार के शिक्षा और समाज-कल्याण-विभाग के उपमन्त्री हैं।

मैं उन्हें वर्षों से जानता हूँ। मुंगेर या दिल्ली में मैंने उन्हे कई बार देखा है। वे मुझे जहाँ भी मिले है, उन्होंने मेरे साथ प्रेममय व्यवहार किया है। मैं उनके सारल्य का कायल हूँ। उनका भीतर-बाहर एक-सा है। उनके व्यवहार में कृत्रिमता नहीं है। वे आपादमस्तक विनीत हैं। मिलनसारिता उनकी प्रकृतिगत विभूति है। इस मिलनसारिता में उनकी आत्मीयता कूट-कूटकर भरी होती है। उनकी स्मरणशक्ति तीव्र है। उनके जीवन मे सात्त्विकता है। वे बहुत अध्ययनशील हैं। उनके श्यामवर्ण आनन पर बालसुलभ सरलता नृत्य करती है। उनका कद मँझोला है। उनके व्यवहार [illegible] ...क्य है—

'सत्यम् ब्रूयात् प्रियम् ब्रूयात् न ब्रूयात् सत्यमप्रियम् ।'

अर्थात् 'सत्य बोलना चाहिए, प्रिय बोलना चाहिए किन्तु अप्रिय सत्य नहीं बोलना चाहिए ।' इस नीति के यादवजी समर्थक ही नहीं है, व्यवहारी भी हैं। इस नीति के व्यवहारी के मित्रों की संख्या असंख्य होगी और वह अजातशत्रु होगा। यादवजी के मित्रों की संख्या नगण्य नहीं है और वे वस्तुतः अजातशत्रु हैं। इसलिये उनके हृदय में किसी के प्रति कटुता नहीं है। वे द्वेष से कोसों दूर रहते हैं। दया, क्षमा, करुणा, उदारता, महाशयता, प्रेमलता, बन्धुता आदि जितने मानवीय सद्गुण हैं, वे सब उनमें कूट-कूटकर भरे हैं। उन्होंने अपने बौद्धिक सन्तुलन से सब क्षेत्रों में अपना प्रभाव जमाया है। वे सबसे प्रेमपूर्वक वार्तालाप करते हैं। वे किसी के साथ नाराजगी जाहिर नहीं करते। यही मैं उन्हें अतिमानव मानता हूँ। लेकिन मानवीय दुर्बलताएँ उनमें न होंगी, यह मैं नहीं कह सकता। वे दुर्बलताएँ उनमें हैं लेकिन नियन्त्रित रूप में।

वे प्रत्येक प्रकार के वातावरण से घिरे रहने पर भी प्रतिक्षण निर्विकार और निर्लेप रहते हैं, ठीक उसी प्रकार, जिस प्रकार कमल जल में रहकर भी जल से सम्पृक्त नहीं होता। यह निर्विकारता या निर्लेपता उनमें संसार के प्रति उदासीनता या वितृष्णा उत्पन्न नहीं करती। जीवन में उन्हें राग है, विराग नहीं ; प्रेम है, मोह नहीं। यह राग उन्हें किसी वस्तु से अन्धरूप में नहीं बाँधता। यह प्रेम उनमें अविवेक नहीं भरता। इसलिए वे रागी हैं, विरागी भी, प्रेमी हैं, मोही भी।

उनकी चित्तवृत्तियाँ राजनैतिक और साहित्यिक दोनों क्षेत्रों में रमती हैं। २ अप्रैल, '७२ ई० को दिल्ली के लोगों ने श्री जगजीवन बाबू को अभिनन्दनग्रंथ समर्पित किया था। श्री यादवजी ने इस समारोह में सक्रिय भाग लिया था। ३ अप्रैल, '७२ ई० को मैं उनके डेरे में श्री प्रेमनाथ शर्मा के साथ गया। वे मुंगेर जिले के लोगों से घिरे हुए थे। मैंने उन्हें कहा – 'आप अपनी कुर्सी उठाइए और मैं भी एक कुर्सी उठाता हूँ। हम लोग एकान्त में कुछ देर बातें करेंगे।' हम लोगों ने दस मिनट तक उनसे बातें कीं। फिर मैंने उन्हें फुर्सत दी। अन्त में उन्होंने मुझसे पूछा—'सुहृद् जी, आप किस जिले के निवासी हैं?' मैंने मजाक करते हुए हँसकर उन्हें कहा—'जहाँ बड़े-बड़े लोग पैदा होते हैं।' यह सुनकर वे चुप हो गये। मैंने उन्हें बताया कि मैं छपरा जिले के उस गाँव का निवासी हूँ जिस गाँव में श्री जयप्रकाश नारायण उत्पन्न हुए हैं।'

जब वे प्रथम बार लोकसभा के सदस्य हुए, मेरी भेंट उनके साथ हुई थी दिल्ली में। मेरे साथ श्री विष्णुदेव नारायण अग्रवाल भी थे। श्री यादवजी का डेरा 'साउथ एवेन्यू' में था। मैंने उनका परिचय श्री विष्णुदेव बाबू से कराया। मैंने श्री विष्णुदेव बाबू की गाड़ी से यादवजी को उनके डेरे तक पहुँचाया। हम लोगों ने वहाँ चाय पी। मैंने अनुभव किया, उनमें बड़प्पन की भावना छू तक नहीं गयी है।

उनका जन्म १९१७ ई० में एक मध्यमवर्गीय परिवार में हुआ था। उन्होंने अपनी विद्यालयी शिक्षा मुंगेर में पायी। उन्होंने पटना विश्वविद्यालय से विज्ञान में स्नातकता प्राप्त की। वे अपने छात्र जीवन में युवक-आन्दोलन में सक्रिय रहते थे। उन्होंने १९५४ ई० में अखिल भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के कल्याणी अधिवेशन में भाग

पर 'कांग्रेस सेवा दल' का प्रतिनिधित्व किया था। उन्होंने बिहार विश्वविद्यालय से एम० एस सी० की परीक्षा प्राणिशास्त्र में पास की और सर्वोत्तम अंक प्राप्त किये।

उनकी राजनैतिक प्रतिभा उनकी आनुवंशिक देन है। उनके जनक मुंगेर में कांग्रेस म्युनिसिपल कमिश्नर हैं और नागरिक कार्यों के सक्रिय कार्यकर्त्ता हैं।

श्री देवेन्द्रप्रसाद यादव ने १९६१ ई० से १९६३ ई० तक नागपुर में सी० एस०-आई० आर० के तत्त्वावधान में केन्द्रीय जन-स्वास्थ्य अभियंत्रणा अनुसंधान संस्थान में विज्ञानविद् के रूप में सेवा की थी। इसके पूर्व वे आर० डी० और डी० जे० कॉलिज, मुंगेर में प्राध्यापक थे। ग्रामीण छात्रों में वैज्ञानिक ज्ञान के विकास और शिक्षा के उन्नयन के लिए उन्होंने सी० एस० आई० आर० की नौकरी से त्याग-पत्र दिया। १९६२ ई० से मुंगेर जिले के कांग्रेसी आन्दोलनों को उन्होंने गति दी है, यह उनकी संघटनात्मक योग्यता का सबल और पुष्ट प्रमाण है। १९६४ ई० से पण्डित जवाहर-लाल नेहरू के जन्म-दिवस पर वैज्ञानिक विषयों पर 'नेहरू स्मारक भाषणमाला' के आयोजकों में वे प्रधान रहे हैं। वे पण्डित नेहरू की स्मृति में एक वैज्ञानिक अजायब-घर की स्थापना करना चाहते हैं। इसलिए संसार के ऐसे अजायबघरों से सम्बद्ध साहित्य के अनुशीलन के पश्चात् उन्होंने एक 'ब्लू प्रिंट' प्रस्तुत की है। उनकी 'ब्लूप्रिंट' के अनुसार अजायबघर जर्मनी के म्यूनिख अजायबघर और संयुक्त राष्ट्र अमेरिका के वाशिंगटन वैज्ञानिक अजायबघर के ढंग पर होगा जो छात्रों में वैज्ञानिक व्यावहारिक ज्ञान भरेगा। उनका विश्वास है, भारत वैज्ञानिक उन्नयन से उन्नत होगा।

इस अर्थ में वे स्वप्न द्रष्टा हैं और स्वप्न-स्रष्टा भी। लेकिन उनके स्वप्न हवाई किले नहीं हैं वरन् भारत की आधुनिक उन्नति के सोपान होंगे और यही वे आधुनिक भारत के निर्माताओं में एक होंगे। उनके इस रूप से युग उनसे प्रेरणा पायेगा और उन-की लीक का अनुगामी होगा। वस्तुतः जो युग-निर्माता होता है और युग-स्रष्टा होता है वह अपनी लीक स्वयं बनाता है—वह दूसरों की लीक का अनुगामी नहीं होता। यहीं मैं कहूँगा, श्री यादव में गतानुगतिकता नहीं है। प्रगति उनकी जिन्दगी की साँस है। उन्होंने बिहार के शैक्षिक उन्नयन में और विशेषतः मुंगेर की प्रत्येक शिक्षा-संस्था के उत्थान में अपना सक्रिय योग दिया है। मैं उनके दीर्घ जीवन की मंगल कामना पालता हूँ!

समस्त सुहृद्-साहित्य की सूची

काव्य

१—विजय (खण्ड काव्य)	३.५०
२—बिहार विभूति (खण्ड काव्य)	१२ ५०
३—जगजीवन (खण्ड काव्य)	३.५०
४—प्रेम-मिलन (खण्ड काव्य)	३.५०
५—बेगूसराय गोलीकाण्ड (खण्ड काव्य)	२ ५०
६—विश्व वीणा (कवितायें)	२ ५०
७—प्रेम-प्रलाप (कविताएँ)	३.००
८—निर्झरणी (कविताएँ)	२.५०
९—वन्दी (कविताएँ)	८.५०
१०—रजनी (कविताएं)	३ ६२
११—सचयिता (कविताएँ)	१२ ५०

गद्य

१२—डॉक्टर अनुग्रह नारायण सिंह (जीवनी)	१२ ००
१३—जगजीवनराम (जीवनी)	२.५०
१४—बीती बातें (आत्मकथा)	१५.००
१५—मेरे अपने (संस्मरण)	६ ००
१६—व्यक्ति और व्यक्तित्व (संस्मरण)	८.००
१७—प्रेम निकुंज (गद्य काव्य)	२ ००
१८—भारत-नेपाल (सचित्र)	० ००
१९—बादल (कहानी)	१२ ००
२०—युगपुरुष महापुरुष	१० ००

सुहृद्-साहित्य पर स्वतंत्र ग्रंथ और निबंध

२१—सुहृद् : डॉ० सुधांशु

२२—सुहृद् खण्ड काव्य : डॉ० महेश, डॉ० नवल

२३—सुहृद् और उनका काव्य : श्री लक्ष्मी नारायण शर्मा मुकुर

२४—सुहृद् अभिनन्दन ग्रंथ—सम्पादक : डॉ० कौशल किशोर, एम०ए०एल०एल०बी०, पी-एच०डी० (लन्दन)

२५—कवि सुहृद्-कृतित्व और व्यक्तित्व : डॉ० लक्ष्मी नारायण सुधांशु, एम०ए०एम०एल०ए०

२६—सुहृद्जी युग युग जिएँ· व्याकरणाचार्य पं० किशोरी दास वाजपेयी

२७—सुहृद्वर सुहृद जी : डॉ० हजारी प्रसाद द्विवेदी

२८—श्री सुहृद् जी : आचार्य काका कालेलकर

२९—श्री सुहृद् जी : आचार्य शिवपूजन सहाय

३०—भाई-सुहृद् जी : श्री सरयूप्रसाद सिंह, बी०ए०बी०एल०, एम०एल०ए०

३१—भाई सुहृद् जी : डॉ रामधारी सिंह दिनकर एम०पी०, डी० लिट्०

३२—भाई सुहृद् जी : श्री रामवृक्ष बेनीपुरी